

**List of Books Published from
HARIBOLE KUTIR, NABADWIP.**

| | |
|-----------------------------|-------------|
| 1. Brindaban-Mahimamritam | Re. 1.1 a. |
| 2. Virudabali-Lakshanam | } as 6. |
| 3. Gopal-Virudabali | |
| 4. Bhakti-Rasamrita-Sesha | 8 as. |
| 5. Madhab-Mahotshabam | Rs. 2.8 as. |
| 6. Dhatu-Sangraha | 1 a. |
| 7. Radhakrishnarchan-Dipika | 12 as. |
| 8. Krishnahnika-Kaumudi | Rs. 2. |
| 9. Dankeli-Chintamani | 4 as. |
| 10. Surat Kathamritam | 4 as. |
| 11. Nikunja-Keli-Virudabali | 8 as. |
| 12. Chamatkar-Chandrika | 4 as. |
| 13. Siddhanta-Darpana | 6 as. |
| 14. Chhanda-Kaustubha | 8 as. |
| 15. Gouranga-Virudabali | 4 as. |

BOOKS YET TO BE PUBLISHED.

1. Lilastab by Sripad Sanatan Goswami
2. Sri Krishnabhishek by Sripad Rup Goswami.
3. Commentary of Yogasara – Stotra and other Minor works of Sripada Jib Goswami.
4. Commentary of Gopal Tapani Upanishad by Viswanath Chakravarti and Baldeva Vidyabhusan.
5. Sri Gouranga Champu.

Printed by R. P. Goswami at
the Krishna Press, Brindaban.

समाख्यः

छन्दःकोस्तुभः

श्रीश्रीराधादामोदर-प्रभुपाद-विरचितः

श्रीहरिदास दास

छन्दःकौस्तुभः

श्रीश्रीराधादामोदर-प्रभुपाद-कृतः ।

श्रीमद् वलदेव-विद्याभूषणस्य भाष्योपेतः ।



श्रीहरिदास-दासेन प्रकाशितः ।

[श्रीधाम नवद्वीप-हरिवोलकुटीरतः]

४५७ श्रीगौराब्दः



सर्वस्वत्वं सुरक्षितम्]

[मूल्यं—प्रेम

निवेदनम् ।

इह खलु काव्य-जगति छन्दोविज्ञानं कविता-रसिकानामा-
नन्दातिरेकं सम्पादयत् सविशेषमुपकारं साधयति, छन्दोविज्ञाता-
रश्च काव्यनिर्माणे अञ्जसैव शक्ता भवेयुरिति किमु वक्तव्यं ।
वेदाङ्गरूपत्वमस्य च पूर्वतनैः स्वीकृतं, यथा— शिक्षा कल्पो
व्याकरणं निरुक्तं छन्द इत्यपि । ज्योतिषामयनञ्चैव षडङ्गो
वेद उच्यते' इति । पाणिनीय-शिक्षायामपि—'छन्दः पादौ तु
वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्त
श्रोत्रमुच्यते ॥ शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतं ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महोयते' इति । अस्याज्ञानमपि
पापत्वेन संसूचितं—'अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवतं योगमेव च ।
योऽध्यापयेद् जपेद्वापि पापीयान् जायते तु स' इति । 'मन्त्रो
हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्ब्रजो
यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधा'दित्यादि च ।
एतच्छास्त्रफलमाह—'छादयति एनसः पापात् कर्मण' इति श्रुतिः ।
'छन्दांसि छादनादिति' यास्कः । चन्दयति ह्लादयतीति छन्दः ।
'चन्देरादेश्च छः' इति पाणिनिः । 'छन्दः पद्ये च वेदे चे'त्यमर-
कोशाद् वेदे प्रयुक्तमपि लोके बद्धपदं पद्यमेव छन्दः इति
भण्यते ।

इह किल छन्दःकौस्तुभे श्रीमता राधादामोदर-प्रभुणा
केवलं लौकिकच्छन्दसां लक्षणानि निरूपितानि । श्रीमद् बलदेव
विद्याभूषण-महोदयेन चास्य भाष्यं संयोजितं । छन्दःसूत्र-
छन्दोमञ्जर्यादितच्छास्त्रस्य बहुल-सङ्ख्यावेऽपि गौरेश्वर-संप्रदायि-

विद्यार्थिनां परमोपयोगित्वेन सुखबोधने चास्य विनियोगादेन-
मेवाङ्गीकुर्वन्तु गौडीय-विद्वांसः । तथा चास्मिन् यत्र यादृशं
छन्दः समुपक्रान्तं तस्य लक्षणं तादृशेनैव छन्दसा निबद्धत्वात्
सुकोमल-मतीनां बालकानामपि सहजेनैवात्र मति-प्रवेशः स्यादिति
मन्यामहे । तथा रोलादिछन्दसां वर्णमात्रा-प्रस्तारादीनाञ्च
सन्निवेशात् खल्वस्मिन् छन्दोमञ्जर्या अपि समादरो व्यक्तीभवेत् ।
अपरञ्चात्र ग्रन्थेऽनिरूपितानां छन्दसामपि लक्षणानि ग्रन्थशेषे
परिशिष्टमध्ये सन्निविष्टानि, यथा ह्येकेनैव ग्रन्थेन सर्वसमाधानं
स्यादिति ।

श्रीवृन्दावने श्रीश्रीराधादामोदर-ग्रन्थागारस्य खण्डित-
पुस्तकद्वयं, पुराणसहरस्थ-गोस्वामिमन्दिरस्य पुस्तकमेकं तथा
श्रीरङ्गनाथमन्दिरस्थ-श्रीनिवास-पुस्तकालस्य पुस्तकमेकं दृष्ट्वास्य
पाठोद्धारः कृतः । संशोधन-विषये प्रयत्नविशेषे कृतेऽपि
बुद्धिमान्द्यात् करणापाटवाच्च स्वलनमवश्यम्भावीति मर्षणीयं
शोधनीयञ्च सुधीभिरिति सवहुमानं प्रार्थ्यते—

श्रीवृन्दावनतः
श्रीविद्याभूषण-स्मरणतिथिः } आश्रव — श्रीहरिदासदासेन ।
श्रीदशहरा, ४५७ गौराब्दः

छन्दसां सूचीपत्रम् ।

[अकारादि-वर्णानुसारतः]

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|-------------------|--------|----------------|--------|
| अचलभृतिः | २७ | अश्वललितं | ३३ |
| अतिशायिनी (प) * | ८१ | अस-वाधा | २३ |
| अद्वितनया | ३३ | आख्यानकी | ३७ |
| अनङ्गक्रीडा | ५६ | आपातलिका | ५० |
| अनङ्गशेखरः | ३६ | आपीडं | ४७ |
| अनवलिता (प) | ७६ | आर्या | ४६ |
| अनुकूल (टी) * | ७७ | आर्यागीतिः | ४६ |
| अनुकूला | १७ | इन्दिरा (टी) | ७७ |
| अनुष्टुभ (प) | ८३ | इन्दिरा (प) | ८० |
| अपरवक्तृ | ३८ | इन्दुवदना | २४ |
| अपराजिता | २३ | इन्द्रवज्रा | १५ |
| अपरान्तिका | ५१ | इन्द्रदशा | १८ |
| अपवाहः | ३४ | उज्ज्वला | २० |
| अमृतधारा | ४१ | उद-व्यवृत्तिः | ५० |
| अर्णादि | ३४ | उद्गता | ३६ |
| अरिलं | ५७ | उद्गीतिः | ४६ |
| अशोकपुष्पमञ्जरी | ३५ | उपगीतिः | ४८ |
| अशोकमञ्जरी (प) | ८२ | उपचित्रं (प) | ७६ |
| अश्वगतिः | २७ | " | ३६ |
| " (प) | ८१ | उपचित्रा | ५२-३ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|---------------------|--------|--------------------|--------|
| उपजातिः | १५ | कुण्डलिका | ५५ |
| उपमालिनी (प) | ८१ | कुपुरुषजनिता (प) | ७६ |
| उपस्थितं | १७ | कुमारललिता | ११ |
| " | २२ | कुमारी (प) | ८१ |
| उपस्थिता | १५ | कुसुमविचित्रा | १६ |
| " (प) | ७६ | कुसुमस्तवकं | ३५ |
| उपस्थित-प्रचुपितं | ४२ | कुसुमाली (टी) | ७७ |
| उपेन्द्रवज्रा | १५ | कुसुमितलतावेष्टिता | २६ |
| ऋषभः (वृषभः) | २६ | केतुमती | ३७ |
| ऋषभगजविलसितं | २६ | केसरम् (प) | ८२ |
| पुला | २५ | कोकिलकं | २८ |
| श्रौपच्छन्दसिकं | ५० | कोरक (टी) | ७७ |
| कन्दुक (प) | ८० | कौमुदी (प) | ८३ |
| कन्या | १० | क्राडाचक्रं (प) | ८२ |
| कमला (प) | ७६ | क्रौञ्चपदा | ३३ |
| कलगीत (टी) | ७७ | खञ्जा | ५७ |
| कलहसः | २२ | गजगतिः (प) | ७६ |
| कलिका | ४१ | गजेन्द्रलता (प) | ८२ |
| कलितभृङ्ग (टी) | ७७ | गरुडरुतं | २७ |
| कान्ता (प) | ८१ | गाथा | ४३ |
| कान्तिङ्ग्वर (टी) | ७८ | गीतिः (आर्या) | ४८ |
| किरीटं (प) | ७६ | गीतिका | ३१ |
| कुटजगतिः (प) | ८० | गुच्छकः (टी) | ७७, ७८ |
| कुण्डलगतः | २२ | गुणमणिनिकरः | २४ |
| कुण्डलं | २४ | गौरी | २१ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|----------------------|--------|-------------------------|--------|
| चकिता | २६ | छाया | ३० |
| चक्रपदं (प) | ८१ | जघनचपला | ४८ |
| चञ्चरीकावली (प) | ८० | जलधरमाला | २० |
| चण्डवृष्टिप्रपातः | ३४ | जलोद्धतगतिः | १८ |
| चण्डो | २१ | जत्र (जत्र) परामती | ३८ |
| चतुष्पदं | ५४ | तनुमध्या | ११ |
| चन्द्रकान्ता | २६ | तन्वी | ३३ |
| चन्द्ररेखा (प) | ८० | तरलनयनं (प) | ८० |
| चन्द्रलेखा | २५ | त-विपुला | ४६ |
| " (प) | ८२ | तामरस | १६ |
| चन्द्रवर्त्म | १८ | तारका | ३० |
| चन्द्रिका | २२ | तूणकं | २५ |
| चन्द्रौरसः (प) | ८१ | तोटकं | १८ |
| चपला (आर्या) | ४८ | त्रिभङ्गी | ५८ |
| चपला (वक्त्रं) | ४४ | त्वरितगतिः | १४ |
| चल (प) | ८२ | दक्षिणान्तिका | ५० |
| चारुहासिनी | ५१ | दीपकमाला (प) | ८० |
| चित्रं (चित्रा) | २५ | दुर्मिलं (प) | ७६ |
| चित्र | २६ | दुर्मिला | ५८ |
| चित्रा (पञ्चभटिका) | ५२ | दोधकं | १६ |
| चित्रपदा | १२ | द्रुता (प) | ८० |
| चित्रलेखा | ३० | द्रुता | २४ |
| " (प) | ८१ | द्रुतपदं (प) | ८० |
| चुलियाला | ५८ | द्रुतमध्या (अर्द्धसम) | ३७ |
| चूडामणिः | ११ | द्रुतविलम्बितं | १८ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|------------------|--------|------------------|--------|
| द्विपथा (दोहा) | १४ | पद्ममाला | १३ |
| द्विपदी (टी) | ७७ | पादाकुलकं | १३ |
| धीरललिता (प) | ८१ | पुटः | १८ |
| नदी (प) | ८० | पुष्पविचित्रा | २० |
| नन्दनं | २६ | पुष्पिताग्रा | ३८ |
| नन्दिनी | २२ | पृथ्वी | २८ |
| नर्दटकं | २८ | प्रचितक | ३५ |
| नलिनी (प) | ८१ | प्रबोधिता | २२ |
| नवमालिनी | २० | प्रभद्रकं | २५ |
| न-विपुला | ४५ | प्रभा | २१ |
| नान्दीमुखी | २४ | प्रमदा (प) | ८० |
| नाराचं | २६ | प्रमाणिका | १२ |
| नाराचिका | १३ | प्रमितावरा | १६ |
| नारी | १० | प्रवङ्गम | ५७ |
| निशिपालकः (प) | ८१ | प्रवरललितं | २७ |
| पङ्क्तिः | १० | प्रवृत्तकं | ५१ |
| पञ्चभटिका | ५१ | प्रहरणकलिका | २३ |
| पञ्चचामरः (प) | ८० | प्रहर्षिणी | २१ |
| " | २६ | प्राच्यवृत्तिः | ५० |
| " (प) | ८१ | प्रियम्बदा | २० |
| " (प) | ८२ | प्रिया | ११ |
| पणवः | १४ | फुल्लदाम | ३१ |
| पथ्या (आर्या) | ४७ | ब्रह्मरूपं (प) | ८१ |
| " (वक्तृ) | ४४ | भद्रकं | ३२ |
| पदचतुर्वर्ध | ४० | भद्रविराट् | ३७ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|-----------------------|--------|-------------------|--------|
| भ-विपुला | ४५ | मदनललिता | २७ |
| भद्रिका (प) | ७६ | मदलेखा | ११ |
| भद्रिका | १६ | मदिरा | ३२ |
| भाराक्रान्ता | २८ | मधुमतो | ११ |
| भुजगशिशुसृता | १३ | मध्यक्षामा (प) | ८० |
| भुजङ्गप्रयातं | १६ | मनोरमा | १५ |
| भुजङ्गावजृम्भितं | ३४ | मन्दाकिनी | १६ |
| भुजङ्ग-ङ्गता | १४ | मन्दाक्रान्ता | २८ |
| भृङ्गार (टी) | ७८ | मयूरसारिणी | १४ |
| भ्रमरपदक (प) | ८२ | महास्वधरा | ३२ |
| भ्रमरविलसिता | १६ | माणवकं | ५२ |
| मकरन्दिका (प) | ८२ | मात्रासमकं | ५२ |
| मञ्जरी (प) | ८१ | मानसहंसः (प) | ८१ |
| मञ्जुभाषिणी | २२ | मालती | १६ |
| मञ्जुसौरभं (प) | ८३ | मालभारिणी | ३७ |
| मञ्जुहासिनी (प) | ८० | मालिनी | २५ |
| मणिकल्पलता | २७ | मुखचपला | ४८ |
| मणिमञ्जरी (प) | ८२ | मुखदेव (टी) | ७८ |
| मणिमध्यं | १४ | मुग्धलौरभं (टी) | ७७ |
| मणिमाला | २० | मृगी | १० |
| मत्तमयूरः | २१ | मृगेन्द्रमुखं | २२ |
| मत्तमातङ्गलीलाकरः | ३५ | मृदङ्गकं | २६ |
| मत्ता | १४ | मेघविस्फूर्जिता | ३० |
| मत्ताक्रीडं | ३३ | मोटकं (प) | ८० |
| मत्तोभविक्रीडित (प) | ८८ | मोटनकं | १७ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|----------------|--------|--------------------|--------|
| मौक्तिकदाम | १६ | वरयुवतिः (प) | ८१ |
| यवमती | ३८ | वल्लकी | ३१ |
| युग्मविपुला | ४५ | वसन्ततिलका | २३ |
| रथोद्धता | १६ | वसुधा | २४ |
| र-विपुला | ४५ | वसुमती | ११ |
| रुक्मवती | १४ | वाणिनी | २७ |
| रुचिरा | २१ | वातोर्मी | १६ |
| " | ५७ | वानवाणिका | ५२ |
| रूपामाली (प) | ७६ | वासन्ती | २३ |
| रोला | ५३ | वालन्तीयं (प) | ८१ |
| लक्ष्मी (प) | ८० | वितानं | १२ |
| लता | २६ | विद्याधारः (प) | ८० |
| ललना (प) | ८० | विद्युन्माला | १२ |
| ललितं (प) | ८० | विद्युल्लेखा (प) | ७६ |
| " (विषम) | ३६ | विध्वङ्गमाला (प) | ८० |
| ललिता | २० | विपरीताख्यानकी | ३८ |
| लवली | ४१ | विपरीतपथ्यावक्तुं | ४४ |
| लालसा (प) | ८२ | विपिनतिलकं | २५ |
| लालित्यं | ३३ | विपुला (आर्या) | ४८ |
| लीलाखेलं | २५ | विभावरी | २० |
| लोला | २३ | विभवं (प) | ८२ |
| वंशपत्रपतितं | २८ | विश्लोकः | ५२ |
| वंशस्थविलं | १८ | वृत्तं | ३१ |
| वक्तुं | ४४ | वृत्ता | १६ |
| वर्द्धमानं | ४२ | वृषभः | २६ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|------------------|--------|------------------------|--------|
| वेगवती | ३६ | सरसी | ३२ |
| तालीयं | ४४ | सान्द्रपदं | १७ |
| श्वदेवो | १६ | सारङ्गः (प) | ८० |
| शशिकला | २४ | सिंहविक्रान्तः (प) | ८३ |
| शशिवदना | ११ | सिंहावक्रीडः (प) | ८२ |
| शादलः (प) | ८२ | सिंहविस्फूर्जितं (प) | ८२ |
| शादलललितं | ३० | सुकेशरं (प) | ८१ |
| शादलावक्रोदितं | ३० | सुचन्द्राभा | १३ |
| शालिनी | १६ | सुधा (प) | ८१ |
| शिखरिण्डितं | १७ | सुन्दरिका (प) | ७६ |
| शिखरिणी | २७ | सुन्दरी | ३८ |
| शिखा | ५६ | सुपविशं (प) | ८० |
| शुद्धविराट् | १४ | सुमुखी | १६ |
| शुद्धविराडार्धभं | ४२ | सुरसा | ३१ |
| शोभा | ३१ | सुवंशा (प) | ८२ |
| श्येनी | १७ | सुवदना | ३१ |
| श्रीः | ६ | सुविलासा | १३ |
| " | १७ | सोमराजी | ११ |
| पद्पदं | ५४ | सोरठ्ठं | ५४ |
| संफुल्लकं (टी) | ७७ | सौरभकं | ३६ |
| सतो | १० | स्त्री | १० |
| सन्धिवर्षिणी | २२ | स्रक् | २४ |
| समदविलासिनी | २६ | स्रग्धरा | ३२ |
| समानिका | १२ | स्रग्विणी | १६ |
| समुद्रतता (प) | ८२ | स्वागता | १६ |

| छन्दः | पृष्ठे | छन्दः | पृष्ठे |
|------------------|--------|--------------------------|--------|
| हंसमाला | ११ | हरिणप्लुता (अर्द्धसमं) | ३७ |
| हंसरुतं | १२ | हरिणी | २८ |
| हसी (प) | ८० | हलमुखी | १३ |
| " | ३२ | हारिणी | २६ |
| हरकृन्तनं | ३० | हारिहरिणं (टी) | ७७ |
| हरनर्तनम् (प) | ८२ | हीरकं (प) | ८२ |
| हरिः (प) | ८१ | क्षमा | २१ |
| हरिणप्लुता (प) | ८१ | | |

विषय-सूची ।

| विषयाः | पृष्ठाङ्केषु |
|---------------------------|--------------|
| १ । संज्ञा-निबन्धः | १—६ |
| २ । समवृत्तभेदाः | ६—३६ |
| ३ । अर्द्धसमवृत्तभेदाः | ३६—३८ |
| ४ । विषमवृत्तभेदाः | ३६—४३ |
| ५ । वक्त्र-निरूपणं | ४४—४६ |
| ६ । मात्रावृत्तेषु आख्याः | ४६—४८ |
| ,, वैतालीयानि | ४८—५१ |
| ७ । पञ्चभटिकादयः | ५१—५३ |
| रोलादि च्छन्दांसि | ५३—५८ |
| ८ । वर्णप्रस्तारादयः | ५६—६७ |
| ९ । मात्राप्रस्तारादयः | ६८—७८ |
| १० । परिशिष्टं | ७९—८३ |
| ११ । शुद्धिपत्रं | ८४ |

छन्दःकौस्तुभः ।

प्रथमा प्रभा ।

छन्दोभिर्वितताङ्गैः कवयो यस्यानुकीर्त्तयन्ति गुणान् ।
स जयति गोकुल-वनिताजितान्तरः श्यामसुन्दरो भगवान् ॥ १ ॥

श्रीमद् वलदेव विद्याभूषण-कृता—

टीका ।

अर्चितनयनानन्दो राधादामोदरो गुरुर्जीयात् ।

विवृणोमि यस्य कृपया छन्दःकौस्तुभमहं मितवाक् ॥

अथ श्रीनयनानन्द-पदारविन्दसेवासहित-निखिलशास्त्रार्थश्छन्दो-
विद्वृन्दवन्द्यः श्रीराधादामोदराभिख्यः कान्यकुब्जविप्रवंशावतंसो मह-
त्तमः कविश्छन्दःकौस्तुभ नामच्छन्दःशास्त्रं प्रणयन् सर्वच्छन्दःप्रणेय-
चरितं श्रीकृष्णं प्रणमति—छन्दोभिरिति । स श्यामसुन्दरो जयति
स्वोत्कर्षमाविर्भावयतु । जये हेतुर्भगवानिति । 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य
वोर्त्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चापि परमां भग इतीङ्गना'
इत्युक्त-पङ्क्तविशिष्टः । ईदृशोऽपि भक्तिवश्य इत्याह—गोकुलेऽति ।
अन्तरङ्गितम् । कोलावित्याह—छन्दोभिरिति । कवयो यस्य गुणान्
वितताङ्गैश्छन्दोभिः कीर्त्तयन्तीति गोकुल-वनिताभिः सह विहरत
स्तत्प्रेमवश्यस्य तस्य लीलां गातुं छन्दांसि फणोन्द्रेण प्रणीतानि । एवं
वक्ष्यति लीलां विष्णोरिति । छन्द्यन्ते प्रथ्यन्ते पद्यान्येभिरिति छन्दांसि
नैरित्यर्थः । वितताङ्गैरिति प्रस्तुताया जातेरेकस्याभेदादुल्यात् ।
जयति रत्र सर्वोत्कर्षविधायी सर्वोत्कर्षाश्रयः खलु स्वेतरसर्व्वनमस्य

नित्यं निवसतु हृदये चैतन्यात्मा मुरारिर्नः ।
 निरवद्यो निर्वृतिमान् गजपतिरनुकम्पया यस्य ॥ २ ॥
 लीलां विष्णोर्गातुकामोऽतिचित्रा
 ऋच्छन्दास्याख्यद् योऽभिरूपाह्वयानि ।

इत्याक्षिप्यते । सर्वान्तःपातित्वाच्छास्त्रकर्तुश्च स नमस्य इति ।
 सर्व्वनमस्याद् भगवत् तस्मादस्माकं सर्व्वेषां मङ्गलं भूयादिति च व्यज्यते ।
 श्यामसुन्दरो भगवानिति वस्तुस्वरूप-कीर्तनम् । इत्थञ्चाशीर्नमस्क्रिया
 वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखमित्यभियुक्तोक्तं ग्रन्थारम्भे मङ्गलं दर्शितम् ।
 न च मङ्गलमप्रमाणमफलञ्चेति वाच्यं । शिष्टाचारानुमितायाः श्रुतेः
 प्रमाणत्वात् शास्त्रपूर्तेः फलत्वाच्च । ननु क्वचित् सत्यपि मङ्गलेऽसमाप्ति
 रसति च तस्मिन् समाप्तिर्दृष्टा, ततो व्यभिचार इति चेत्, मैवम् ।
 योग्यमङ्गलाकरणाद्वहिस्तत् करणाच्चेत्यावश्यकन्तत् ॥ १ ॥

विघ्नाधिकाशङ्कया पुनर्मङ्गलाचरणम्—नित्यमिति । अत्र मुरारि
 श्वैतन्यश्चेति द्वावर्थौ प्रतिपाद्येते । तत्राद्यो ग्रन्थकर्तुः परमगुरुः
 श्रीरसिकानन्दापराख्यः । स कीदृश इत्याह—चैतन्यात्मेति । चैतन्या-
 र्पितचित्त इत्यर्थः । गजपतिर्गोपालदासाभिधानः करिराजः निरवद्य
 स्यक्तपशुभावः निर्वृतिमान् सत्सेवाजन्यानन्दविशिष्टः । यस्यानुकम्पया
 वभूवेति शेषः । द्वितीयः श्रीमहाप्रभुः । चैतन्यनामा आत्मा विग्रहो
 यस्य । स कीदृश इत्याह—मुरारिरिति संसृतिकुत्सानाशक इत्यर्थः ।
 गजपतिः प्रतापरुद्र उत्कलाधोशः निरवद्यः परित्यक्तराजसः निर्वृतिमान्
 प्रेमसुखमग्नः । अत्र प्रथमोऽर्थो वाच्यः, द्वितीयस्तु व्यङ्ग्यः । भगवत्प-
 क्षोऽपि पद्यमेतत्सुघटम् ॥ २ ॥

अथ छन्दोदेशिकात् पिङ्गलात् स्वरक्षामाशास्ते—लीलामिति ।
 स श्रीमान् नागराजः पिङ्गलः शेषोऽस्मान् पायात् विघ्नाद् रक्षतु । स क
 इत्याह योऽतिचित्रां विष्णोर्लीलां गातुकामः सन्नभिरूपाह्वयानि छन्दांसि

श्रीमान् विद्यावारिधिर्विश्ववन्द्यः
 पायात् सोऽस्मान् पिङ्गलो नागराजः ॥ ३ ॥
 छन्दो लक्षणहीनं सभासु काव्यं पठन्ति ये मनुजाः ।
 कुर्वन्तोऽपि स्वेन स्वशिरश्छेदं न ते विद्युः ॥ ४ ॥
 वर्णमात्राविभेदेन छन्दो द्विविधमीरितम् ।
 लक्ष्यलक्षणरूपन्तत् प्रायः संगृह्यते मया ॥ ५ ॥
 मयरसतजभन संज्ञा शृच्छन्दस्यष्टौ गणा स्त्रिवर्णाः स्युः ।
 भूम्यम्बुवह्निवायुव्योमार्कसुधांशु-नाकदास्ते ॥ ६ ॥

आख्यत् अवोचत् । भगवच्चरित्र-गायकः खलु शेषः । 'गायन् गुणान्
 दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पार'मित्याद्युक्तेः ॥
 छन्दोनिबन्धमन्तरा तद्गानासिद्धेः । अतएव तल्लीलानुपाह्वयानि तानि
 कृतानि । स्फुटमयत् ॥ ३ ॥

छन्दोबोधं विना विद्वान् सभायामुपहासपात्रम्भवत्यतस्तद्वोध
 आवश्यक इत्याह—छन्दोलक्षणेति । स्वेनात्मना स्वहस्तेनेति यावत् ।
 न विद्युर्न जानीरन् ॥ ४ ॥

वर्णमात्रेति—वर्णवृत्तं मात्रावृत्तञ्चेति द्विभेदः शृच्छन्दः । तदत्र
 मया संगृह्यत इति प्राचीनानि सूत्राण्यत्र प्रायः सन्तीत्युक्तम् । कीदृशं
 छन्द इत्याह—लक्ष्यलक्षणरूपमिति । लक्ष्यं छन्दः । लक्षणं तत्
 गणादिनिरूपणन्तदुभयरूपमिति लक्षणमात्रकारिभ्यः प्राचीनेभ्योऽस्य
 ग्रन्थकर्तु रतिपाण्डित्यम् । प्राय इत्यापीडादि छन्दसां लक्ष्यनिरपेक्ष-
 लक्षणमात्रविधानात् । यद्यपि मात्रावृत्तानि कैश्चित् पूर्व्वमभिहितानि,
 तथापि वर्णवृत्तान्यत्र प्रागेवोच्यन्ते, ऋजुरीत्या चित्तप्रवेशहेतुत्वादिति
 बोध्यम् ॥ ५ ॥

द्विभेदश्छन्दः प्रतिज्ञायाम् क्रमप्राप्तानि वर्णच्छन्दसि गणान् गण-
 देवता-गणफलानि चाह—मयरसेति द्वाभ्यां । छन्दसि शब्दोऽष्टौ गणा

क्रमतः श्रीवृद्धिमृति प्रयाणारिक्तत्व रूग् यशो मोदान् ।

यच्छक्तिफलानि गणा माद्या स्तेऽष्टौ प्रयोक्तृभ्यः ॥ ७ ॥

सर्वगुरु र्मः कथितो भ-ज-सा गुर्वादिमध्यान्ताः ।

छन्दास नः सर्वलघुर्यरता लघ्वादिमध्यान्ताः ॥ ८ ॥

गुर्गश्च गुरुरेकः स्याल्लस्त्वेको लघुरुच्यते ।

रेखाभ्यां ऋजुवक्राभ्यां ज्ञेयो लघुगुरु क्रमात् ॥ ९ ॥

भवन्ति, ते च त्रिवर्णा वर्णत्रयरूपाः स्युः । ते किं नामानो भवन्तीत्याह—
मयेति । मादयः संज्ञाः । गुरुत्रयादिरूपा स्त्वष्टौ त्रिकाः संज्ञिनः ।
ते चाष्टौ क्रमाद् भूम्यादि-देवताकाः, क्रमात् श्रयादीनि अष्टफलानि
प्रयोक्तृभ्यः प्रयच्छन्ति । प्रयोक्तारः काव्यस्य कर्तारः कवयः कारयितारश्च
नृपा इत्यवधेयम् । यथासंख्यमलङ्कारः । यदुक्तम्—यथासंख्यं क्रमेणैव
क्रमिकाणां समन्वय इति । गणदेवता फलानां त्वेष ऋजुबोधः । यथा—

मो भूः श्रियं यच्छति योऽम्बुवृद्धिं

रोऽग्निं मृतिं सो मरुत् प्रयाणम् ।

तो व्योमरिक्तिं ज रविः प्ररोगं

भो दुर्यशः सौख्यभरं न नाक इति ॥ ६।७ ॥

गणानां संज्ञां दर्शयित्वाथ संज्ञिनो दर्शयति—सर्वगुरु र्मं
इति । त्रिवर्णं इत्युक्तेः सर्वे त्रयोपि गुरवो यस्य स म-गणः । भजस
इति—गुर्वादि भ-गणः, गुरुमध्यो ज-गणः, गुर्वन्तः स-गण इत्यर्थः ।
छन्दसि वर्णवृत्ते । सर्वे त्रयोऽपि लघवो यस्मिन् स न-गणः । यरता
इति—लघ्वादि य-गणः, लघुमध्यो र-गणः, लघ्वन्त स्तगणः इत्यर्थः ॥ ८ ॥

गुरिति—एकस्मिन् लघौ लकारः सङ्केतितो गुकारो गकारश्चैक-
स्मिन् गुरावित्यर्थः । ननु लघुगुर्वोः कथं परिचयः स्यादित्यत आह—
रेखाभ्यामिति । ऋजुरेखायां लघु ज्ञेयः । वकरेखायां तु गुरु ज्ञेय
इत्यर्थः ॥ ९ ॥

मऽऽऽ, याऽऽ, रऽऽ, स ॥ऽ, जाऽऽ, मऽऽ, ना॥, ल ॥, गऽ ॥

मनौ सखायौ कथितौ भयौ भृत्यावुदीरितौ ।

उदासीनौ तजौ प्रोक्तौ सरौ शत्रू मताविह ॥ १० ॥

सिद्धिर्भवेत् सखिभ्यां सखिभृत्याभ्यां जयः स्थिरत्वञ्च ।

स्याद्भृत्यमित्रभृत्यैः शुभं स्वपीडा तु मित्रशत्रुभ्यां ॥ ११ ॥

अफलमुदासीनाभ्यां शत्रुसखिभ्यां च तद्भवति ।

शत्रुभ्यां तु विरोधो नायकनाशश्च संप्रोक्तः ॥ १२ ॥

शत्रूदासीनाभ्यां हानिरुदासीनभृत्याभ्याम् ।

अस्वायत्तिर्गदिता श्रोनाश शत्रुभृत्याभ्याम् ॥ १३ ॥

क्षयवैरिभय-प्राप्तिर्भवत्युदासीनशत्रुभ्याम् ।

मित्रादासीनाभ्यामश्रीरिति गणफलान् प्राहुः ॥ १४ ॥

हजधून् स्वभान् प्राहुर्दग्धवर्णान् विपश्चितः ।

हजधा हितजीवनधनहरा नृपक्रोधकृद् रंफः ।

अथ मादि-गणानां मित्रादिभावमाह—मनाविति । स्फुटम् ॥ १० ॥

मित्रादिरूपाणां मादीनां श्लोकादौ विन्यस्तानां फलान्याह—
सिद्धिमिति । चतुर्भिः सखिभ्यां मनाभ्यां सखिभृत्याभ्यां मभाभ्यां
नयाभ्यां च; भृत्यमित्रभृत्यैर्भूमयैः यनमैर्वा ॥ ११ ॥

उदासीनाभ्यां तजाभ्यां शत्रुसखिभ्यां रजाभ्यां वा । शत्रुभ्यां
सराभ्यां ॥ १२ ॥

शत्रूदासीनाभ्यां सताभ्यां रजाभ्यां वा । हानिर्द्रविणनाशः ।
उदासीनभृत्याभ्यां तभाभ्यां जयाभ्यां वा । अस्वायत्तिः पारतन्त्र्यम् ।
श्रोनाशः शोभाक्षयः शत्रुभृत्याभ्यां सभाभ्यां रयाभ्याञ्च ॥ १३ ॥

क्षयश्च कुटुम्बनाशः, वैरिभयञ्च तयोः प्राप्तिर्भवति । उदा-
सीन-भृत्याभ्यां तभाभ्यां जयाभ्याञ्च । मित्रोदासीनाभ्यां मताभ्यां तजा-
भ्याञ्च । अश्रोर्द्वारिद्र्यं ॥ १४ ॥

तनुपीडा रुग्णप्रणदा घनखा भ इहातिदूरतिदायी ॥ १५ ॥

गणा दुष्टफला राद्या दग्धवर्णाश्च हादयः ।

शुभश्लोकमुखे नैते प्रयोक्तव्या शुभार्थिभिः ॥ १६ ॥

अत्रापवादः— [भामहवचनं]

देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादि-वाचकाः ।

ते सर्वे न च निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि च ॥ १७ ॥

ज्ञेयाः सधादिमध्यान्तगुरवोऽत्र चतुष्कलाः ।

गणाश्चतुर्लघूपेताः पञ्चायादिषु संस्थिताः ॥ १८ ॥

अनुस्वारी विसर्गी च दीर्घो युक्तपरस्तथा ।

वर्णो गुरुर्मतो हे प्रे पादान्ते चापि वा लघुः ॥ १९ ॥

अथ दुष्टाचराणि तत्फलानि चाह—हजधूति सार्द्धेन । हजधा
इत्यादौ क्रमो बोध्यः । भ-कारो देशाद् विवासयतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

दुष्टवर्णानाञ्च ज्ञापने फलमाह—गणा इति ॥ १६ ॥

इह भामह-वचनेन बाधमाह—देवतेति । श्रीकृष्ण-शङ्करादयो
देवता । भद्रं मङ्गलं लिपिर्वर्णः ॥ १७ ॥

एवं वर्णवृत्तगणादीनुक्त्वा मात्रावृत्तगणानाह—ज्ञेया इति ।
आय्यादिषु मात्रावृत्तेषु संस्थिताः पञ्चगणा ज्ञेया इत्यन्वयः । तेषां
स्वरूपमाह—चतुष्कला इति । पञ्चापि ते चतुर्मात्रात्मका इत्यर्थः ।
तेषां मिथो व्यावर्त्तकान् धर्मान् दर्शयन् विशिनष्टि—सर्वादिमध्यान्तगुरव-
श्चतुर्लघूपेताश्चेति । सर्वत्रादौ मध्येऽन्ते च गुरु र्येषां ते तथा ।
चतुर्लघुना गणेन युक्ताश्चेत्यर्थः । सर्वगुरु रादिगुरु मध्यगुरु रन्तगुरु
श्चतुर्लघुश्चेति । मिथो भिन्नाः पञ्चगणाः ॥ १८ ॥

अथ गुरुलघु-लक्षणमाह—अनुस्वारीति । अनुस्वारि-प्रमुखो
वर्णो गुरुर्मतः । हरिं पुनः साक्षात्करिष्यसीति चतुर्णामुदाहरणम् । हे

चतुर्थः पद्यभागस्तु पादः सद्भिर्निगद्यते ॥ २० ॥

यतिं जिह्वेष्ट-विश्रामस्थानमाहुर्मनीषिणः ।

तां विच्छेद-विरामाद्यैः पदैरत्र प्रयुज्यते ॥ २१ ॥

अयुग्मं विषमं स्थानमयुगोजश्च तद्भवेत् ।

अनोजोयुक् च युग्मं च समन्तत् परिकीर्त्यते ॥ २२ ॥

प्रे च पूर्वस्य ह्रस्वस्य वा लघुत्वम् । तच्च वैवर्त्तिकं बोध्यम् । पादान्ते
गुरुरपि लघुर्लघुश्च गुरुर्विवक्षया भवेत् । वैवर्त्तिकयोर्गुरुलघ्वोः प्रसारे
तु वक्रजरेखे लेख्ये । किञ्च—तोत्रप्रयत्नोच्चारणे गुरोर्लघुत्वमाह कण्ठा-
भरणः । 'यदा तीव्रप्रयत्नेन संयोगादेरगौरवम् । न छन्दोभङ्गमप्याहुः
स्तदा दोषाय सूरय' इति ॥ १६ ॥

पाद-लक्षणमाह—चतुर्थ इति । श्लोकतुर्यांशः पाद इत्यर्थः ।
अत्र भागः समचतुर्थांशो न ग्राह्यः ; यावान् यत्रोच्यते तेन समार्द्धसम-
विपमाणां पादाः स्युः ॥ २० ॥

यतिं लक्षयति—यतिमिति । आदिना खादि-परिग्रहः । अत्र
गोपालदासो विशेषमाह—यथा—

'क्वचिच्छन्दस्यास्ते यतिरभिहिता पूर्वकृतिभिः

पदान्ते सा शोभां व्रजति पदमध्ये त्यजति च ।

पुनस्तत्रैवासौ स्वरविहितसन्धिः श्रयति तां

यथा कृष्णः पुष्पात्तुलमहिमा मां करुणया ॥' इति

श्वेतमाण्डव्यादयस्तु यतिं न मन्यन्ते, यदुक्तं—

'श्वेतमाण्डव्यमुख्यास्तु नेच्छन्ति मुनयो यतिम् ।' इति ॥ २१ ॥

अयुग्मेति—प्रथमतृतीयादिरूपस्य विषमस्थानस्य अयुग्मं अयुक्
ओजश्चेति संज्ञात्रयम् । द्वितीय-चतुर्थादिरूपस्य समस्थानस्य युग्मं
युक् अनोजश्चेति संज्ञा-त्रयम् बोध्यम् । एतच्चार्षसमादिषु वृत्तेषु व्यक्ती-

सममर्द्धसमं वृत्तं विषमञ्चेति तत् त्रिधा ।
 समं समचतुष्पादं वृत्तमर्द्धसमं तु तत् ॥ २३ ॥
 आद्य स्तुतीयवद् यस्य द्वितीय स्तुर्यवद्भवेत् ।
 भिन्नचिह्नचतुष्पादं विषमं परिकीर्तितम् ॥ २४ ॥
 संज्ञा शरहयाद्या तु लोकतोऽध्यवसीयते ॥ २५ ॥
 आरभ्यैकाक्षरात् पादादेकैकाक्षर-वर्द्धितैः ।
 पादैरुक्थादि-संज्ञं स्याच्छन्दः षड्विंशति गतम् ॥ २६ ॥
 उक्थात्युक्था तथा मध्या प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठिका ।
 गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ २७ ॥

भविष्यति ॥ २२ ॥

सममिति--वृत्तं त्रिविधम् । सममर्द्धसमं विषमञ्चेति । तेषु
 समचतुष्पादं वृत्तं सममुच्यते । समा एकलक्षणा श्रुत्वारः पादा यस्य
 तत् । अर्द्धसमन्तु तत्, यस्य वृत्तस्य प्रथमः पाद स्तुतीयतुल्यः ।
 द्वितीय श्रुतुर्थतुल्यो भवति । विषमन्तु वृत्तं भिन्नचिह्नचतुष्पादम् ।
 भिन्नचिह्ना श्रुत्वारः पादा यस्य तत् । वर्त्तते कविरनेन पद्यनिर्मिताविति
 वृत्तम् ॥ २३।२४ ॥

संज्ञेति । शरहया संज्ञा लोकतो ज्योतिःशास्त्रादेव बोध्या ।
 खं शून्यं विधुरेकः स्यान्नेत्र-पक्षौ द्विके स्मृतौ । त्रिके शिखि-गुणा
 वेदाब्धियुगानि चतुष्टये ॥ शरा भूतानि करणानि च प्रोक्तानि पञ्चके ।
 ऋतवो गुहवक्त्राणि रसाश्च षडुदीरिताः । स्वराश्च मुनिलोकाश्च सप्तेह
 परिकीर्तिताः । भोयङ्गवसवोऽष्ट स्युर्नवरन्ध्र ग्रहाः स्मृताः । दिशो
 दशैकादश स्युः शिवा द्वादश सूर्यकाः ॥ चतुर्दशात्र भुवनान्येवमाहु
 र्मनीषिण इति ॥ २५ ॥

आरभ्येति--वर्णच्छन्दांस्येकाक्षर - पादादीनि षड्विंशत्यक्षर-
 पादान्तानि भवन्ति । तानि च क्रमादुक्थादि जातिमन्ति बोध्यानि ॥ २६ ॥

त्रिष्टुप् च जगती चापि तथातिजगती मता ।
 शर्करी सातिपूर्वा स्यादष्टि रत्यष्टिरित्यपि ॥ २८ ॥
 धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृति राकृतिः ।
 विकृतिः संस्कृतिश्चापि तथातिकृति रुतकृतिः ॥ २९ ॥
 दण्डकास्तूद्ध्वमेतेभ्यश्चण्डवृष्ट्यादयो मताः ।
 शेषं गाथा स्त्रिभिः षड्भिश्चरणैरुपलक्षिताः ॥ ३० ॥
 मात्रावृत्तानि चार्थ्यादि-नामान्याहुर्विपश्चितः ॥ ३१ ॥
 इति छन्दःकौस्तुभे संज्ञा-निबन्धः प्रथमा प्रभा ॥ १ ॥

द्वितीया प्रभा ।

(१)

तत्रैकाक्षरोक्था—यथा, ग् श्रीः ॥ १ ॥

(चतुःपाठात् पद्यपुर्तिः ।)

ता जातीराह--उक्थेति त्रिभिः ॥ २७ ॥

सातिपूर्वेति--अतिशर्करीत्यर्थः ॥ २८।२९ ॥

दण्डकास्त्विति--एतेभ्यः षड्विंशत्यक्षरपादपर्यन्तेभ्य उद्ध्व-
 सुपरि सप्तविंशत्यक्षर-पादप्रभृतयो दण्डका भवन्ति ॥ ३० ॥

एवं वर्ण-वृत्तसंज्ञाः प्रोच्य मात्रावृत्त-संज्ञा दर्शयति--मात्रा-
 वृत्तानीति ॥ ३१ ॥

इति श्रोविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभभाष्ये प्रथमा प्रभा ॥ १ ॥

सममर्द्धसमं वृत्तमित्युक्तक्रमप्राप्त-समवृत्तभेदां स्तावदाह--तत्रै-
 केति । श्रीरिति--यत्र प्रतिपादमेको गुरु स्तत् श्रीछन्दः । उदाहरणं--
 श्रीस्ते सा स्ताम् ॥ १ ॥

(२)

द्वयक्षरात्युक्ता—यथा, गौ स्त्री ॥ २ ॥

(३)

त्र्यक्षरा मध्या—यथा, मो नारी ॥ ३ ॥

—रो मृगी ॥ ४ ॥

(४)

चतुरक्षरा प्रतिष्ठा—यथा, रमौ चेत् कन्या ॥ ५ ॥

—नगि सती ॥ ६ ॥

(५)

पञ्चाक्षरा सुप्रतिष्ठा—यथा

भृगौ गिति पङ्क्तिः ॥ ७ ॥

द्वयक्षरेति—गौ स्त्री—यत्र प्रतिपादं गुरुद्वयं स्यात्, तत् स्त्री छन्दः । गोपस्त्रीभिः कृष्णो रेमे ॥ २ ॥

त्र्यक्षरेति—मो नारी । यत्र प्रतिपादं म-गण स्तत्रारो छन्दः । गोपानां नारीभिः । श्लिष्टोऽव्यात कृष्णो वः ॥ ३ ॥

रो मृगी—यत्र प्रतिपादं र-गण स्तन्मृगी छन्दः । सा मृगी-लोचना राधिका व्याहरत् ॥ ४ ॥

चतुरक्षरेति—रमौ चेत् कन्या । गुरु र्भगणश्चेत् कन्या छन्दः । कृष्णो यस्या श्वेतश्चक्रे । सेयं भानोः कन्या धन्या ॥ ५ ॥

नगि सती—यत्र प्रतिपादं न-गणगुरु स्यातां, तत् सती छन्दः । मधुरियो तव वचः । पिबति सा किञ्च सती । एवमप्रेऽप्युदाहरणानि कल्प्यानि ॥ ६ ॥

पञ्चाक्षरेति—भृगौ गिति । भगणो गुरुद्वयश्चेत् पङ्क्तिः

सल्लगैः प्रिया ॥ ८ ॥

(६)

षडक्षरा गायत्री—यथा, त्यौ चेत् तनुमध्या ॥ ९ ॥

शशिवदना न्यौ ॥ १० ॥

द्विया सोमराजी ॥ ११ ॥

तसौ चेद् वसुमती ॥ १२ ॥

(७)

सप्ताक्षरोष्णिग, यथा, ननगि मधुमती ॥ १३ ॥

कुमारललिता जसौ ग ॥ १४ ॥

मसौ गः स्यान् मदलेखा ॥ १५ ॥

चूड़ामणि स्तभगाः ॥ १६ ॥

सरगा हंसमाला ॥ १७ ॥

छन्दः ॥ ७ ॥

सल्लगैरिति—यत्र सगणलघुगुरवः स्यु स्तत् प्रिया छन्दः ॥ ८ ॥

षडक्षरेति—त्यौ चेदिति । तगण-यगणौ यत्र प्रतिपादं स्यातां तत्तनुमध्या छन्दः ॥ ९ ॥

शशीति—यत्र न-गण-यगणौ स्यातां तच्छशिवदना छन्दः ॥ १० ॥

द्वियेति—यत्र यगणद्वयं तत् सोमराजी छन्दः ॥ ११ ॥

तसौ चेदिति—यत्र तगण-सगणौ स्यातां तद्वसुमती छन्दः ॥ १२ ॥

सप्ताक्षरेति—ननगीति । नगणौ गुरुश्चेन्मधुमती छन्दः ॥ १३ ॥

कुमारेति—जगण-सगणगुरवश्चेत् कुमारललिता छन्दः ॥ १४ ॥

मसौग इति—मगण-सगण-गुरवश्चेन्मदलेखा छन्दः ॥ १५ ॥

चूड़ेति—तगण-भगण-गुरवश्चेच्चूड़ामणि छन्दः ॥ १६ ॥

(८)

अष्टाक्षरानुष्टुप्—यथा, चित्रपदा यदि भौ गौ ॥ १८ ॥

मो मो गो गो विद्युन्माला ॥ १९ ॥

भात्तो लगा माणवकम् ॥ २० ॥

म्नौ गौ हंसरुतमेतत् ॥ २१ ॥

ग्लौरजौ समानिका तु ॥ २२ ॥

प्रमाणिका जरौ लगौ ॥ २३ ॥

वितानमाभ्यां यदन्यत् ॥ २४ ॥

सरगा इति—सगण-रगणगुरुव श्रेष्ठं समाला छन्दः ॥ १७ ॥

अष्टाक्षरेति—चित्रेति । यत्र भगणौ गुरु च स्यातां, तच्चित्रपदा

छन्दः ॥ १८ ॥

मो म इति—यत्र मगणौ गुरु च स्यातां, तद्विद्युन्माला

छन्दः ॥ १९ ॥

भात्तेति—भगण-तगण-लघुगुरुवश्चेन्माणवक छन्दः ॥ २० ॥

झौगाविति—मगण-न-गणौ गुरु च यत्र स्यातां, तत् हंसरुतं

छन्दः ॥ २१ ॥

ग्लौविति—यत्र गुरुलघू रगण-जगणौ च स्यातां तत् समानी

छन्दः । छन्दोऽनुरोधात् स्वार्थे कः ॥ २२ ॥

प्रमाणिकेति—यत्र जगण-रगणौ लघुगुरु च स्यातां तत्प्रमाणी

छन्दः ॥ २३ ॥

वितानमिति—अनुष्टुभि जातौ समानिका-प्रमाणिकाभ्यां यदन्यत्

छन्दो दृश्यते, तद् वितान-सज्ञं, यथा—

गोविन्दमञ्जलोचनं कन्दर्पदूर्तमोचनम् ।

नाराचिका तरौ लगौ ॥ २५ ॥

पद्ममाला च रौ द्वौ गौ ॥ २६ ॥

सुचन्द्राभा यरौ ग्लौ च ॥ २७ ॥

सुविलासा सरौ ग्लौ हि ॥ २८ ॥

(९)

नवाक्षरा वृहती—यथा.

रात्रसाविह हलमुखी ॥ २९ ॥

भुजगशिशुसृता नो मः ॥ ३० ॥ [भृतेति केचित्]

संसार-बन्धनाशनं वन्दे हरादि-शासनम् ॥ इत्यादि—

अन्ये त्वाहुः—गुरुलघू-क्रमेण समानीपादसमाप्तिः, लघुगुरुक्रमेण प्रमाणी-पादसमाप्तिः विताने तु द्वौ गुरु द्वौ लघू द्वौ गुरु इत्यनेन क्रमेण पादसमाप्ति भवेदिति । तत्राद्यस्योदाहरणं—‘कृष्णं भजे तृष्णां त्यजे’ इत्यादि । द्वितीयस्य तु—‘हृदयं यस्य विशालमित्यादि’ । मूलोदा-हरणन्तु—जगणतगण-गुरुलघूरूपम् ॥ २४ ॥

नाराचकमिति—यत्र तगण-रगणौ लघुगुरु च स्यातां, तन्नारा-चकछन्दः ॥ २५ ॥

पद्येति—यत्र रगणद्वयं गुरुद्वयञ्च स्यात्तत् पद्ममाला छन्दः ॥ २६ ॥
सुचन्द्रेति—यगण-रगणौ गुरुलघू यत्र स्यातां तत् सुचन्द्राभा छन्दः ॥ २७ ॥

सुविलासेति—यत्र सगणरगणौ गुरुलघू च स्यातां, तत् सुवि-लासा छन्दः ॥ २८ ॥

नवाक्षरेति—रात्रेति । रगण-नगण-सगणाश्चेत् हलमुखी छन्दः ॥ २९ ॥

भुजमेति—यत्र नगणाद्वयं मगणाश्च स्यात्तद् भुजगशिशुसृता छन्दः

स्यान् मणिमध्यां चेद् भमसाः ॥ ३१ ॥

सजरैर्भुजङ्गसङ्गता ॥ ३२ ॥

(१०)

दशाक्षरा पंक्तिः—यथा,

रुक्मवती सा यत्र भमौ सगौ ॥ ३३ ॥

[रूपवतीति चम्पकमालेति च क्वचित्]

ज्ञेया मत्ता मभसगसृष्टा ॥ ३४ ॥

मसौ जगौ शुद्धविराडिदं मत ॥ ३५ ॥

मनो यगौ चेति पणव नामेदम् ॥ ३६ ॥

जौरगौ मयूरसारिणी स्यात् ॥ ३७ ॥

त्वरितगतिश्च नजनगैः ॥ ३८ ॥

स्यादिति—यत्र भगण-मगण-सगणाः स्युः तन्मणिमध्यच्छन्दः ॥

सजरैरिति—यत्र सगण-जगण-रगणा भवन्ति तद्भुजङ्गसङ्गता

छन्दः ॥ ३२ ॥

दशाक्षरेति—रुक्मेति । यत्र भगण-मगणौ सगण - गुरु च

स्यातां, तद् रुक्मवती छन्दः ॥ ३३ ॥

ज्ञेयेति—मगण-भगणौ सगण-गुरु च यदि स्यातां, तर्हि मत्ता

छन्दः ॥ ३४ ॥

मसौजिति—मगण-सगणौ जगण-गुरु च यदि स्यातान्तदा शुद्ध-

विराट् छन्दः ॥ ३५ ॥

मनायिति—मगण-नगण-यगण-गुरवो यदि स्युस्तदा पणवछन्दः ॥

जौरिति—यत्र रगण-जगणौ रगण-गुरु च स्यातान्तन्मयूर-

सारिणी छन्दः ॥ ३७ ॥

त्वरितेति—नगण-जगण-नगण-गुरुभि स्वरितगतिच्छन्दः ॥ ३८ ॥

नरजगैर्भवेन् मनोरमा ॥ ३९ ॥

(११)

एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्, यथा—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ नगौ गः ॥ ४० ॥

उपेन्द्रवज्रा जतजा स्ततो गौ ॥ ४१ ॥

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ

पादौ यदीयावुपजातय स्ताः ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु

वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥ ४२ ॥

तजो जगौ गुरुण्यमुपस्थिता स्यात् ॥ ४३ ॥

नरेति—नगण-रगण-जगण-गुरुभि मनोरमा छन्दः ॥ ३९ ॥

एकादशाक्षरेति—स्यादिन्द्रेति । यत्र तगण-द्वयं जगणो गुरु-
द्वयञ्च स्यात्तदिन्द्रवज्रा छन्दः ॥ ४० ॥

उपेन्द्रेति—जगण-तगण-जगणा गुरुद्वयञ्च यदि भवन्ति,
तदोपेन्द्रवज्रा छन्दः ॥ ४१ ॥

अनन्तरेति—यदीयौ पादौ अनन्तरोदीरित-लक्ष्मभाजौ इन्द्रवज्रा-
पेन्द्रवज्रा-लक्ष्मणयुक्तौ स्यातां ता उपजातयो भवेयुः, भेदान्तरोपलक्षणा-
मेतत् । इत्थमुपजातिषु प्रागुक्तास्वतःपरं वक्ष्यमाणाषु च मिलितासु-
पजातयो भवन्ति । जगत्यां यथा वंशस्थविलेन्द्रवंशयो योगे ता
बोध्याः ॥ ४२ ॥ *

तजौ जिति—तगणो जगणद्वयं गुरुद्वयञ्च यत्र स्यात्तदुपस्थिताछन्दः

* तथैव त्रिष्टुभि स्वागतारथोद्धतयोरपि प्रस्तारपथेन चतुर्दशो-
पजातयः स्युः ।

न ज जल गै र्गदिता सुमुखी ॥ ४४ ॥
 मात्तौ गौ चेत् शालिनी वेदलोकैः ॥ ४५ ॥
 दोधक मिच्छति भ-त्रितयाद्गौ ॥ ४६ ॥
 वातोर्मीयं गदिता भौ तगौ गः ॥ ४७ ॥
 मो गो नौ गो भ्रमर-विलसिता ॥ ४८ ॥
 रात्परै र्नरलगै रथोद्धता ॥ ४९ ॥
 स्वागता रनभगै गु रूणा च ॥ ५० ॥
 न न स ग गुरुरचिता वृत्ता ॥ ५१ ॥
 न न र ल गुरुभि स्तु भद्रिका ॥ ५२ ॥

नजेति—नगणो जगणद्वयं लघुगुरु च यदि स्यु स्तदा सुमुखी
 छन्दः ॥ ४४ ॥

मात्ताविति—शालिनी छन्दसि मगणस्तगद्वयञ्च भवति ।
 चतुर्भिः सप्तभिश्च यति रित्यर्थः ॥ ४५ ॥

दोधकमिति—भगणत्रयं गुरुद्वयञ्च यत्र स्यात्तदोधक छन्दः ॥ ४६ ॥

वातोर्मीति—मगण-भगण-तगणा गुरु च यत्र स्यु स्तद् वातोर्मी
 छन्दः ॥ ४७ ॥

मोग इति—यत्र मगण-गुरु नगणद्वयं गुरुश्च भवन्ति, तद् भ्रमर-
 विलसिता छन्दः ॥ ४८ ॥

रात्परैरिति—रगण-नगण-रगण-लघुगुरुभौ रथोद्धता छन्दः ॥

स्वागतेति—रगण-नगण-भगणा गुरु च यत्र स्यु स्तद् स्वागता
 छन्दः ॥ ५० ॥

ननसेति—यत्र नगणद्वयं सगणो गुरुद्वयञ्च स्यात्तद्वृत्ता छन्दः ॥

ननेति—यत्र नगणद्वयं रगणो लघुगुरु च भवन्ति, तद् भद्रिका

श्येन्युदीरिता रजौ रलौ गुरुः ॥ ५३ ॥
 उपस्थितमिदं जसौ ताद् गकारौ ॥ ५४ ॥
 पञ्चरसैः श्री र्भतन गुगाश्चेत् ॥ ५५ ॥
 शिखण्डितमिदं जसौ त्गौ गु षड्भिः ॥ ५६ ॥
 स्यादनुकूला भतन गुगाश्चेत् ॥ ५७ ॥
 [इयं मौक्तिकमालेति केचित् ।]
 स्वान मोटनकं तजजाश्च लगौ ॥ ५८ ॥
 सान्द्रपदं भतौ नगु लघुभिश्च ॥ ५९ ॥

छन्दः ॥ ५२ ॥

श्येनोति—रगण-जगणौ रगण-लघुगुरुश्च यत्र स्यु स्तद् श्येनो

छन्दः ॥ ५३ ॥

उपस्थितमिति—यत्र जगण-सगण-तगणा गुरुद्वयं च भवन्ति,
 तदुपस्थितच्छन्दः ॥ ५४ ॥

पञ्चेति—भगण-तगण-नगणा गुरुद्वयञ्च यदि स्युः, पञ्चभिः
 षड्भिश्च यतिः स्यात्तदा श्रीछन्दः ॥ ५५ ॥

शिखण्डितमिति—जगण-सगणौ तगण-गुरुद्वये च यत्र स्यातां,
 तत् शिखण्डितच्छन्दः, षड्भि र्यतिः ॥ ५६ ॥

स्यादिति—भगण-तगण-नगणा गुरुयुगलञ्च यत्र स्यात्तदनुकूला
 छन्दः ॥ ५७ ॥

स्यान्मोटेति—यत्र तगणो जगणद्वयं लघुगुरु च भवन्ति, तन्मो-
 टनकं छन्दः ॥ ५८ ॥

सान्द्रेति—यत्र भगण-तगण-नगणा गुरुलघू च भवन्ति, तत्
 सान्द्रपदच्छन्दः ॥ ५९ ॥

द्वादशाक्षरा जगती—यथा,

चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसैः ॥ ६० ॥

वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ॥ ६१ ॥

[वंशस्तनितमित्यन्ये ।]

तच्चेन्द्रवंशा प्रथमाक्षरे गुरौ ॥ ६२ ॥

रसौ र्जस जसा जलोद्धतगतिः ॥ ६३ ॥

इह तोटक मम्बुधि सै र्गदितम् ॥ ६४ ॥

द्रुतविलम्बित माह नभौ भरौ ॥ ६५ ॥

वसुयुगविरति नौ म्यौ पुटौ ऽयम् ॥ ६६ ॥*

द्वादशाक्षरेति—चन्द्रति । रगण-नगण-भगण-सगणौ चन्द्रवर्त्म-

छन्दः ॥ ६० ॥

वदन्तोति—यत्र जगण-तगणौ जगणौ-रगणौ च स्यातां तद्

वंशस्थविज्छन्दः ॥ ६१ ॥

तच्चेति—तगणौ जगण-रगणौ च यत्र स्यातान्तदिन्द्रवंशा

छन्दः ॥ ६२ ॥

रसैरिति—यत्र जगण-सगणौ द्विः स्यातां, यतिश्च षड्भिः,

तज् जलोद्धतगतिच्छन्दः ॥ ६३ ॥

इहेति—चतुर्भिः सगणौ स्तोटकच्छन्दः ॥ ६४ ॥

द्रुतेति—नगण-भगणौ भगण-रगणौ च यदि स्यातां, तर्हि

द्रुतविलम्बित छन्दः ॥ ६५ ॥

वसुयुगेति—नगणौ मगण-यगणौ च यदि स्यातामष्टमि चतुर्भिः

* मुनिगरावरति नौ म्यौ पुटौ ऽयमिति तु वृत्तरत्नाकरः ।

चतुर्जगणम्बद मौक्तिकदाम ॥ ६७ ॥

कीर्तितेषा चतूरेफिका स्रग्विणी ॥ ६८ ॥

वाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ॥ ६९ ॥

प्रमिताक्षरा सजससै र्गदिता ॥ ७० ॥

न न र र घटिता तु मन्दाकिनी ॥ ७१ ॥

[प्रमुदितवदनेति केचित् ।]

न य सहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा ॥ ७२ ॥

इह वद तामरसं न ज जा यः ॥ ७३ ॥

भवति नजावथ मालती जरौ ॥ ७४ ॥

[यमुनाति केचित् ।]

भुजङ्गप्रयातं भवेद् यैश्चतुर्भिः ॥ ७५ ॥

अथ यति स्तदा पुटच्छन्दः ॥ ६६ ॥

चतुरिति—चतुर्भिः जगणौ मौक्तिकदाम छन्दः ॥ ६७ ॥

कीर्तितेति—चतुर्भिः रगणैः स्रग्विनी छन्दः ॥ ६८ ॥

वाणेति—यत्र मगणौ यगणौ च स्यातां, पञ्चभिः ससभिश्च

यतिरपि भवेत्तद् वैश्वदेवी छन्दः ॥ ६९ ॥

प्रमितेति—यत्र सगण-जगणौ सगणद्वयञ्च भवन्ति तत् प्रमिता-

क्षरा छन्दः ॥ ७० ॥

ननरेति—नगणद्वयेन रगणद्वयेन च मन्दाकिनी छन्दः ॥ ७१ ॥

नयेति—यत्र नगण-यगणौ द्विः स्यातान्तत् कुसुमविचित्रा छन्दः

इहेति—यत्र नगणौ जगणद्वयं यगणश्च स्यात्तामरस छन्दः ॥

भवतीति—नगण-जगणौ जगण-रगणौ च यदि स्यातान्तदा

मालती छन्दः ॥ ७४ ॥

इह भवेन्नभजरैः प्रियम्बदा ॥ ७६ ॥

त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्ना गुहवक्त्रैः ॥ ७७ ॥

त्यौत्याविति निर्दिष्टा पुष्पविचित्रा ॥ ७८ ॥

विभावरी तु सा जरौ जरौ यतः ॥ ७९ ॥

[पञ्चचामरमित्यन्ये ।

धीरै रभाणि ललिता तमौ जरौ ॥ ८० ॥

ननभर-रचिता कथितोज्ज्वला ॥ ८१ ॥

अव्यङ्ग्यैः स्याज् जलधरमाला म्भस्माः ॥ ८२ ॥

भुवि नवमालिनी नजभयैः स्यात् ॥ ८३ ॥

भुजङ्गेति—चतुर्भि र्यगणौ भुजङ्गप्रयातच्छन्दः ॥ ७६ ॥

इह भवेदिति—नगण-भगणौ जगण-रगणौ च यदि स्यातां तर्हि प्रियम्बदा छन्दः ॥ ७६ ॥

त्यौत्याविति—यत्र तगण-यगणौ द्विः स्यातां, यतिश्च पदभिः, तत् मणिमाला छन्दः ॥ ७७ ॥

त्यौत्याविति—मणिमालैव यतेरमावे पुष्पविचित्रा छन्दः ॥ ७८ ॥

विभावरीति—यत्र जगण-रगणौ द्विः पठिता, तद् विभावरी छन्दः ॥ ७९ ॥

धीरैरिति—यत्र तगण-भगणौ जगण-रगणौ च स्यातान्त ललिता छन्दः ॥ ८० ॥

ननभेति—नगण-द्वयेन भगण-रगणाभ्याञ्च उज्ज्वला छन्दः स्यात् ॥ ८१ ॥

अव्यङ्ग्यैरिति—मगण-भगणौ सगण-मगणौ च यदि स्याता- चतुर्भि रशभिश्च यति स्तदा जलधरमाला छन्दः ॥ ८२ ॥

स्वरशर-विरति र्ननौ रौ प्रभा ॥ ८४ ॥

(१३)

त्रयोदशाक्षरातिजगती—यथा,

त्र्याशाभि र्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥ ८५ ॥

तुरगरसयति नौ ततौ गः क्षमा ॥ ८६ ॥

जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः ॥ ८७ ॥

प्रभवति ननससगैरिह चण्डी ॥ ८८ ॥

वेदै रन्ध्रै र्मृतौ यसगा मत्तमयूरः ॥ ८९ ॥

भवति भुवि न न सरै र्गै न गौरी ॥ ९० ॥

भुवीति—नगण-जगणाभ्यां भगण-यगणाभ्याञ्च नवमालिनी छन्दः ॥ ८३ ॥

स्वरेति—नगणद्वयं रगणद्वयञ्च यत्र स्यात्, सप्तभिः पञ्चभिश्च यति स्तत् प्रभा छन्दः ॥ ८४ ॥

त्रयोदशाक्षरेति—त्र्याशाभिरिति । मगण-नगणौ जगण-रगणौ गुरुश्च यत्र भवन्ति, त्रिभि र्दशभिश्च यतिः, तत् प्रहर्षिणी छन्दः ॥ ८५ ॥

तुरगेति—नगणद्वयं तगणद्वयं गुरुश्च यत्र स्यात् सप्तभिः षड्भि र्च यतिः, तत् क्षमा छन्दः ॥ ८६ ॥

जभाविति—जगण-भगणौ सगण-जगणौ गुरुश्च यत्र स्युः, चतुर्भि र्नवभिश्च यति स्तद्रुचिरा छन्दः ॥ ८७ ॥

प्रभवतीति—नगणद्वयं सगणद्वयं गुरुश्च यदि स्यात्तदा चण्डी छन्दः ॥ ८८ ॥

वेदैरिति—मगण-तगणौ यगण-सगणौ गुरुश्चेत यत्र स्युः, चतुर्भि र्नवभिश्च यतिः, तन्मत्तमयूर छन्दः ॥ ८९ ॥

कुटिलगतिर्नजौ सप्तभिः षड्भिस्तमौग ॥ ६१ ॥

उपस्थितमिदं जसौ तसौ सगुरुकौ चेत् ॥ ६२ ॥

सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी ॥ ६३ ॥

[इयं सुमंगलेति प्रबोधितेति सुनन्दनीति चान्यत्र ।]

जतौ सजौ गो भवति सन्धिवर्षिणी ॥ ६४ ॥

न न त त गुरुभिश्चन्द्रिका श्वर्त्तूभिः ॥ ६५ ॥

[उत्पलिनीति केचित् ।]

इह नन्दिनी सजससैर्गुरुयुक्तैः ॥ ६६ ॥

[कलिहंसः कुटिलः सिंहनादश्चेत्यन्ये ।]

भवति मृगेन्द्रमुखं नजौ जरौ गः ॥ ६७ ॥

भवतीति—नगणद्वयं सगण-रगणौ गुरुश्चैते यत्र स्युः, तद् गौरी छन्दः ॥ ६० ॥

कुटिलेति—यत्र नगणजगणौ तगण-मगणौ गुरुश्च भवन्ति, सप्तभिः षड्भिश्च यतिस्तत् कुटिलगति छन्दः ॥ ६१ ॥

उपेति—यत्र जगण-सगणौ तगण-सगणौ गुरुश्च भवन्ति, तत् उपस्थितछन्दः ॥ ६२ ॥

सजसा इति—यत्र सगण-जगणौ द्विः पठितौ गुरुश्चैकस्तत् मञ्जुभाषिणी छन्दः ॥ ६३ ॥

जताविति—जगण-तगणौ सगण-जगणौ गुरुश्च यत्र स्युस्तत् सन्धिवर्षिणी छन्दः ॥ ६४ ॥

ननतेति—नगणयोस्तगणयोश्च युगलेन गुरुणा च चन्द्रिका छन्दः, सप्तभिः षड्भिश्च तस्मिन् यतिरित्यर्थः ॥ ६५ ॥

इहेति—सगण-जगणौ सगणद्वयं गुरुश्चैते यत्र स्युः, तन्नन्दिनी छन्दः ॥ ६६ ॥

(१४)

चतुर्दशाक्षरा शक्करी—यथा,

मो गो गो नौ मः शरनवभि रसम्वाधा ॥ ६८ ॥

न न रस लघुगैः स्वरै रपराजिता ॥ ६९ ॥

ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ १०० ॥

[इयमुद्धर्षिणीति सिंहोद्धतेति मधुमाधवीति च क्वचित् ।]

न न भ न ल गिति प्रहरणकलिका ॥ १०१ ॥

मस्तो नो मो गौ यदि गदिता वासन्तीयम् ॥ १०२ ॥

द्विःसप्तच्छिदि लोला मसौ म्भौ गौ चरणे चेत् ॥ १०३ ॥

भवतीति—नगण-जगणौ जगण-रगणौ गुरुश्च यदि स्यातां तर्हि मृगेन्द्रमुखच्छन्दः ॥ ६७ ॥

चतुर्दशाक्षरेति—मो गो ग इति । मगणो गुरुद्वयं नगणद्वयं मगणश्च यत्र स्यात्, षड्भिर्नवभिश्च विश्रामस्तदाऽसम्वाधा छन्दः ॥

ननरसेति—नगणौ रगण-सगणौ लघुगुरु च यदि भवेतां, यतिश्च सप्तभिस्तर्ह्यपराजिता छन्दः ॥ ६९ ॥

ज्ञेयेति—तगणो भगणो जगणयुगलं गुरुयुगलञ्च यत्र स्यात्, तद् वसन्ततिलका छन्दः । केचिदेतत् क्लीवमाहुः ॥ १०० ॥

ननभेति—नगणद्वयं भगण-नगणौ लघुगुरु चैते यत्र स्युः, तत् प्रहरणकलिका छन्दः ॥ १०१ ॥

मस्त इति—मगण-तगणौ नगण-मगणौ गुरु च यत्र स्यातां, तद् वासन्ती छन्दः ॥ १०२ ॥

द्विः सप्तेति—मगण-सगणौ मगण-भगणौ गुरु च यत्र स्यातां सप्तभिश्च विच्छेदः, तल्लोला छन्दः ॥ १०३ ॥

इन्दुवदना भजसनैः सगुरुयुग्मैः ॥ १०४ ॥

स्वरभिदि यदि नौ तौ च नान्दीमुखी गौ ॥ १०५ ॥

[वसन्तोऽयमित्यन्ये ।]

सजसा यलगा श्र वसुधा सपञ्चग्रहैः ॥ १०६ ॥

युगदिग्भिः कुटिलमिति मतं स्भौ न्यौ गौ ॥ १०७ ॥

पञ्चदशाक्षरातिशक्कुरी—यथा,

द्विहत-हय लघुरथ गिति शशिकला ॥ १०८ ॥

स्त्रग्रिह भवति रस-नवकयतिरियम् ॥ १०९ ॥

वसुमुनियतिरिह गुणमणिनिकरः ॥ ११० ॥

इन्दुवदनेति—यत्र भगण-जगण-सगण-नगणाः स्युर्गुरुयुग्मञ्च, तदिन्दुवदना छन्दः ॥ १०४ ॥

स्वरेति—यत्र नगणयो स्तगणयोश्च युगलं गुरुयुगलं च स्यात्, सप्तभि र्यति स्तन्नान्दीमुखी छन्दः ॥ १०५ ॥

सजसा इति—यत्र सगण-जगणौ सगण-यगणौ लघुगुरु च स्यातां, तद् वसुधा छन्दः ॥ १०६ ॥

युगेति—सगण-भगणौ नगण-यगणौ गुरु च यत्र स्यातां, चतुर्भिर्दशभिश्च यतिः भवेत्तत् कुटिलच्छन्दः ॥ १०७ ॥

पञ्चदशाक्षरेति—द्विहतेति । चतुर्दशलघवो गुरुश्चैको यत्र स्युस्तच्छशिकला छन्दः ॥ १०८ ॥

स्त्रगिति—पङ्क्तिभिर्नवभिश्च यतिश्चेद्भवति, तर्हि शशिकलैव स्रक् छन्दः ॥ १०९ ॥

वसुमुनीति—अष्टभिः सप्तभिश्च यतिश्चेद्भवति, तर्हि गुणमणि-निकरोऽपि सैव भवति ॥ ११० ॥

न न म य स युनेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ १११ ॥

भवति नजौ भजौ रसहितौ प्रभद्रकम् ॥ ११२ ॥

[सुकेशरामित्यन्ये ।]

सजना नयौ शरदशकविरति रेला ॥ ११३ ॥

एकन्यूनौ विद्युन्मालापादौ चेल्लीलाखेलः ॥ ११४ ॥

विपिनतिलकं नसनरेफयुग्मैर्भवेत् ॥ ११५ ॥

भ्रौ मो यौ चेद्भवेतां सप्ताष्टकैश्चन्द्रलेखा ॥ ११६ ॥

तूणकं समानिका-पदद्वयं विनान्तिमम् ॥ ११७ ॥

चित्रा नाम च्छन्दश्चित्रञ्च त्रयो मा यकारौ ॥ ११८ ॥

ननमयेति—नगणद्वयेन भगणेन यगणद्वयेन च मालिनी छन्दः, अष्टभिः सप्तभिश्च यतिरित्यर्थः ॥ १११ ॥

भवतीति—नगणजगणभगणजगणरगणैः प्रभद्रकच्छन्दः ॥ ११२ ॥
सजना इति—यत्र सगणजगणौ न-गणद्वयं यगणाश्चैते भवन्ति, तदेला छन्दः । पञ्चभिर्दशभिश्च तस्मिन् यतिर्भवेत् ॥ ११३ ॥

एकन्यूनेति—पञ्चदशभिर्गुरुभिर्लीलाखेलच्छन्दः ॥ ११४ ॥
विपिनेति—नगण-सगणाभ्यां नगणेन रगणयुग्मेन च विपिन-तिलकच्छन्दः ॥ ११५ ॥

भ्रौम इति—मगण-रगण-मगण-यगणयुगलैश्चन्द्रलेखा छन्दः, सप्तभि रष्टभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ ११६ ॥

तूणकमिति—गुरुलघुरगणजगणौ गुरुलघु-रगण-लघुगुरुभिश्च तूणकच्छन्दः ॥ ११७ ॥

चित्रेति—यत्र मगणत्रयं यगणद्वयञ्च स्यात्तच्चित्रा छन्दः ; चित्र-च्छन्दश्च तदेव कथ्यते ॥ ११८ ॥

छन्दो भवेत् तमज्जै रयुतौ मृदङ्गकम् ॥ ११६ ॥

चन्द्रकांताऽभिधा रौ त्थौ य-विरामे स्वराष्टौ ॥ १२० ॥

भवतः सजौ ससयुतौ वृषभ स्ततो यः ॥ १२१ ॥

(१६)

अथ षोडशाक्षराऽष्टिः—यथा,

चित्र संज्ञमीरितं समानिका-पदद्वयन्तु ॥ १२२ ॥

प्रमाणिका-पदद्वयं वदन्ति षञ्चचामरम् ॥ १२३ ॥

अत्रिनगैः स्वरात् खं ऋषभगजविलसितम् ॥ १२४ ॥

[गजतुरगविलसितमित्यन्ये ।]

भात् समतनगै रष्टच्छेदे स्यादिह चकिता ॥ १२५ ॥

छन्दो भवेदिति—तगणभगणाभ्यां जगण-युगेन रगणेन च मृदङ्गकच्छन्दः ॥ ११६ ॥

चन्द्रेति—रगणद्वयेन तगणेन यगणयुगलेन च चन्द्रकान्ताभिधा छन्दः, सप्तभि रष्टभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १२० ॥

भवत इति—सगण-जगणाभ्यां सगणद्वयेन यगणेन वृषभ-च्छन्दः ॥ १२१ ॥

षोडशाक्षरेति—चित्रेति । गुरुलघुरगणजगणा यत्र द्विः पठिता, स्तच्चित्रसंज्ञ छन्दः ॥ १२२ ॥

प्रमाणिकेति—जगणलघुगुरवो यत्र द्विः पठ्यन्ते, तत् पञ्चचामर-छन्दो द्वितीयम् ॥ १२३ ॥

अत्राति—भगण-रगणाभ्यां नगण-त्रिकेण गुरुणा च ऋषभ गजविलसित छन्दः, स्वरात् सप्तमवर्णात् खं यति भवति ॥ १२४ ॥

भात्सेति—भगण-सगण-मगणै स्तगण-नगण-गुरुभिश्च चकिता

म्भौ नो म्भौ गो मदनललिता वेदैः षड्भुभिः ॥ १२६ ॥

नजरभभेन गेन च स्यान् मणिकल्पलता ॥ १२७ ॥

यमौ नः स्त्रौ गश्चेत् प्रवरललितं नाम वृत्तम् ॥ १२८ ॥

नजभजरैः सदा भवति वाणिनी ग-युक्तौ ॥ १२९ ॥

द्विगुणित-वसुलघुभि रचल धृति रिह ॥ १३० ॥

पञ्चभ-कारकृता ऽश्वगति र्यति रन्तगुरुः ॥ १३१ ॥

गरुडरुतां नजौ भजतगा यदा स्यु स्तदा ॥ १३२ ॥

(१७)

सप्तदशाक्षराऽत्यष्टिः—यथा,

रसैरुद्रै शिछन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ॥ १३३ ॥

छन्दः । अष्टभि स्तत्र छेदो यतिरित्यर्थः ॥ १२५ ॥

म्भौ न हात—मगणभगण-नगणौ मगणनगण-गुरुभिश्च मदन-ललिता छन्दः, चतुर्भिः षड्भिः षड्भिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १२६ ॥

नजरभेति—नगणजगणरगणौ भगणद्वयेन गुरुणा च मणिकल्प-लता छन्दः ॥ १२७ ॥

यमौ न इति—यगणमगणनगणौ सगणरगण-गुरुभिश्च प्रवर-ललित छन्दः ॥ १२८ ॥

नजभेति—नगणजगणाभ्यां भगणजगणाभ्यां अगणगुरुभ्याञ्च वाणिनी छन्दः ॥ १२९ ॥

द्विगुणेति—यत्र षोडशलघवः स्यु स्तदचलधृतिच्छन्दः ॥ १३० ॥

पञ्चभेति—यत्र पञ्चभगण गुरुश्च स्युः, तदश्वगतिच्छन्दः ॥ १३१ ॥

गरुडेति—नगणजगणौ भगणजगणौ तगणगुरु च यत्र स्यातां, तद् गरुडरुतच्छन्दः ॥ १३२ ॥

दिङ्मुनि वंशपत्रपतितं भर नभ न लगै ॥ १३४ ॥

यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम् ॥ १३५ ॥

हय-ऋतुसागरै र्यतियुतं वद कोकिलकम् ॥ १३६ ॥

जसौ जसजला वसुग्रहयतिस्तु पृथ्वी गुरुः ॥ १३७ ॥

मन्दाक्रान्ता ऽम्बुधिरसहयै मी भनौ तौ ग-युग्मम् ॥ १३८ ॥

भाराक्रान्ता मभनरसला गुरुः श्रुति-षड्.हयैः ॥ १३९ ॥

नसमरस लागः षड्.वेदै हयै हरिणी मता ॥ १४० ॥

सप्तदशाक्षरेति—रसै रुद्रैरिति । यगणमगणनगणैः सगण-भगणाभ्यां लघुगुरुभ्याञ्च शिखरिणी छन्दः । षड्.भि रेकादशभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १३३ ॥

दिङ्मुनीति—भगणरगणनगणमगणै नगणलघुगुरुभिश्च वंशपत्र-पतितं छन्दः । दशभिः सप्तभिश्च तत्र यतिः । दिङ्मुनीति लुप्त-विभक्तिको निर्देशः ॥ १३४ ॥

यदीति—नगणजगणभगणा जगणद्वयं लघुगुरु च यत्र स्युः, तन् नर्दटक च्छन्दः । नर्कुटकमित्यन्ये ॥ १३५ ॥

हयेति—सप्तभिः षड्.भि श्रुतिभिश्च यति श्रेत्तदा नर्दटकमेव कोकिलकं वद कथय । वनकोकिलमित्यन्ये ॥ १३६ ॥

जसाविति—यत्र जगण-सगणौ द्विः पठितौ यगण - लघुगुरवश्च ततः स्युः, तत् पृथ्वी छन्दः ॥ अष्टभि नवभिश्च यतिरित्यर्थः ॥ १३७ ॥

मन्देति—यत्र मगणभगणनगणा स्तगणयुगं गुरुयुगञ्च स्युः, तन्मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ चतुर्भिः षड्.भिः सप्तभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥

भारेति—मगणभगणनगणैः रगणसगणाभ्यां लघुगुरुभ्याञ्च भाराक्रान्ता छन्दः । चतुर्भिः षड्.भिः सप्तभिश्च तत्र यतिः ॥ १३९ ॥

वेदर्वोश्वै र्भभनमयलागश्चेत्तदा हारिणी ॥ १४१ ॥

समदविलासिनी नजभजै र्भर्गै रिन्-शरैः ॥ १४२ ॥

ससजा भजगा गुरु द्रुता भुवि दशाश्व-भिन्ना ॥ १४३ ॥

(१८)

अष्टादशाक्षरा धृतिः—यथा,

स्याद् भूतर्वोश्वैः कुसुमितलतावेष्टिता मृतौ नयौ यौ ॥ १४४ ॥

नजभजरास्तु रेफसहिताः शिवै र्हयै र्नन्दनम् ॥ १४५ ॥

इह न न रचतुष्कसृष्टन्तु नाराच माचक्षते ॥ १४६ ॥

दशवसु-विरति र्ग नौ रै श्रुतिर्भि र्युतौ चेष्टता ॥ १४७ ॥

नसमेति—यत्र नगणसगणमगण-रगणसगणलघुगुरवश्च भवन्ति, तत् हरिणी छन्दः ॥ षड्.भि श्रुतिभिः सप्तभिश्च तत्र यतिः ॥ १४० ॥

वेदेति—यत्र मगणभगणनगणमगणयगणा लघुगुरु च भवन्ति, चतुर्भिः षड्.भिः सप्तभिश्च यति स्तत् हारिणी छन्दः ॥ १४१ ॥

समदेति—यत्र नगणजगणभगणजगणा भगणलघुगुरवश्च भवन्ति, द्वादशभिः पञ्चभिश्च यति स्तत् समदविलासिनी छन्दः ॥ १४२ ॥

ससेति—यत्र सगणद्वयं जगणभगणजगणा गुरु च भवन्ति, तद् द्रुता छन्दः ॥ दशभिः सप्तभिश्च तत्र यतिः ॥ १४३ ॥

अष्टादशाक्षरेति—स्याद् भूतेति । यत्र मगणतगणनगणा यगणाश्च त्रयः स्यु स्तत् कुसुमवेष्टिता छन्दः । पञ्चभिः षड्.भिः सप्तभिश्च यत्र विच्छेदः स्यादित्यर्थः ॥ १४४ ॥

नजभेति—नगणजगणभगणा जगणो रगणद्वयञ्च यदि भवन्ति, एकादशभिः सप्तभिश्च यति, स्तदा नन्दन च्छन्दः ॥ १४५ ॥

इह ननेति—नगण-युगलेन रगणचतुष्केण च नाराचच्छन्दः ॥

अधिकदशयति न नौ रौ भवेतां रगौ तारका ॥ १४८ ॥
 मः सोजः सतसा दिनेशक्तुभिः शार्दूलललितम् ॥ १४९ ॥
 म्भौ न्यौ यौ वेद-युगमुनिभिः स्यात्तदा चित्रलेखा ॥ १५० ॥
 सौ जयौ भरसंयुतावृतुवाणाश्वै हरकृन्तनम् ॥ १५१ ॥

(१६)

ऊनविंशत्यक्षराऽतिधृति र्यथा—

रसर्वाश्वै यमौ न्सौ ररगुरुयुतौ मेघविस्फूर्जिता स्यात् ॥ १५२ ॥
 भवेत् सैव च्छाया तयुगगयुता स्याद् द्वादशान्ते यदा ॥ १५३ ॥
 सूर्याश्वै र्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १५४ ॥

दशेति—दशभि रष्टभि श्र यति—कल्पने नाराच एव लताछन्दः ।
 अधिकेति—त्रयोदशभि र्यति—कल्पने नाराच एव तारका छन्दः
 इत्यर्थः ॥ १४८ ॥

मः सो ज इति—मगण-सगण-जगणाः सगण-तगण-सगणाश्च
 यत्र भवन्ति, द्वादशभिः षड्भिश्च यत्र विश्राम स्तत् शार्दूलललित
 छन्दः ॥ १४९ ॥

म्भौ न्याविति—यत्र मगण-भगण-नगणा यगण-त्रयञ्च भवन्ति,
 चतुर्भिः सप्तभिः सप्तभिश्च यति स्तच्चित्रलेखा छन्दः ॥ १५० ॥

सौ जेति—यत्र रगण-रगणौ जगणायगणौ भगणरगणौ च स्यातां,
 षड्भिः पञ्चभिः सप्तभिश्च यति स्तद् हरकृन्तन छन्दः ॥ १५१ ॥

ऊनविंशत्यक्षरेति—रसर्वेति । यगणमगणौ नगणसगणौ
 रगणद्वयं गुरुश्चैते यत्र स्युः, षड्भिः षड्भिः सप्तभिश्च यतिः, तन्
 मेघविस्फूर्जिता छन्दः ॥ १५२ ॥

भवेदिति—यत्र यगणमगणौ नगण-सगणौ तगणद्वयं गुरु श्वैते
 स्युः, तच्छाया छन्दः इत्यर्थः ॥ १५३ ॥

मौ भनौ यो नो गुरु श्वेत् स्वरमुनि-करगौराह सुरसाम् ॥ १५५ ॥
 मो गौ नौ तौ गौ शरहयतुरगैः फुल्लदाम प्रसिद्धम् ॥ १५६ ॥
 भौ जतौ तस्त-गुरुकौ यदा दिग्ग्रहच्छेदभाग् वल्लकी ॥ १५७ ॥

(२०)

विंशत्यक्षरा कृति र्यथा—

ज्ञेया सप्ताश्वपङ्क्ति र्भिरभनय भला ग श्वेत् सुवदना ॥ १५८ ॥
 सजजा भरौ सलगा यदा गदिता तदा किल गीतिका ॥ १५९ ॥
 त्री रजौ गलौ भवेदिहेदृशेन लक्षणेन वृत्त नाम ॥ १६० ॥
 रसाश्वश्वैः शोभा यमननन त त गा गश्च विद्धि निरुक्ता ॥ १६१ ॥

सूर्याश्वैरिति—यत्र मगण-सगणौ जगण-सागणौ त-गणद्वयं
 गुरुश्चैते स्युः, द्वादशभिः सप्तभिश्च यतिः, तच्छार्दूलविक्रीडित छन्दः ॥

मौ भना इति—यत्र मगण-रगणौ भगणनगणौ यगण-नगण-
 गुरुश्चैते भवन्ति, सप्तभिः सप्तभिः पञ्चभिश्च यतिः, तत् सुरसा छन्दः ॥

मो गाविति—मगणो गुरुद्वयं नगणद्वयं तगणद्वयं पुन गुरुद्वयं
 च यत्र स्यात्, पञ्चभिः सप्तभिः सप्तभिश्च यतिः, तत् फुल्लदाम छन्दः ॥

भौ जेति—रगणभगणजगणा स्तगणत्रयं गुरुश्च यत्र भवन्ति,
 दशभि नवभिश्च यतिः, तद् वल्लकी छन्दः ॥ १५७ ॥

विंशत्यक्षरेति—ज्ञेयेति । यत्र मगणरगणभगणा नगणयगण-
 भगणा लघुगुरु च भवन्ति, तत् सुवदना छन्दः, सप्तभिः सप्तभिः
 षड्भिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १५८ ॥

सजजा इति—सगणो जगणद्वयं भगणरगणौ सगणलघु-
 गुरुश्चैते यत्र भवन्ति, तद् गीतिका छन्दः ॥ १५९ ॥

त्रीरजाविति—यत्र रगण-जगणौ निरुक्तो गुरुलघु च स्यातां,
 तद् वृत्त छन्दः ॥ १६० ॥

(२१)

एकविंशत्यक्षरा प्रकृति र्यथा—

अभनैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता कीर्तिता स्रग्धरेयम् ॥ १६२ ॥

नजभजजाजरौ यदि तदा गदिता सरसी कवीश्वरैः ॥ १६३ ॥

[सिद्धिरिति सिन्धुकमिति च कचित् ।]

(२२)

द्वाविंशत्यक्षराऽऽकृति र्यथा—

मौ गौ ना श्रत्वारी गो गो वसुभुवनयतिरिह भवति हंसी ॥ १६४ ॥

भ्रौनरनारनावथ गुरु दिगर्कुविरमं हि भद्रकमिदम् ॥ १६५ ॥

सप्तभकारयुगेकगुरु गदितेयमुदारतरा मदिरा ॥ १६६ ॥

सजताः ससौ ररौ गः फणितुरङ्गहयैः स्यान् महास्रग्धराख्या ॥

रसाश्वेति—यत्र यगण-मगणौ नगणद्वयं तगणद्वयं गुरुद्वयञ्चैते भवन्ति; षडभिः, सप्तभिश्च यतिः स्यात्तत् शोभा छन्दः ॥ १६१ ॥

एकविंशत्यक्षरेति—अभनैरिति । मगणरगणभगणनगणौ स्त्रिभि र्यगणैश्च स्रग्धरा छन्दः । तत्र सप्तकत्रयेण यतिः स्यात् ॥ १६२ ॥

नजभेति—नगणजगणभगणा स्त्रयो जगणा रगणश्च यत्र स्युः, तत् सरसी छन्दः ॥ १६३ ॥

द्वाविंशत्यक्षरेति—मौगाविति । यत्र मगणद्वयं गुरुद्वयं नगण-चतुष्टयं पुन गुरुद्वयं च स्यादष्टभिश्चतुर्दशभिश्च यति स्तत् हंसी छन्दः ॥ १६४ ॥

भ्रौनेति—यत्र भगणस्ततो रगणनगणश्चैतौ त्रिः पठितौ गुरुश्चैक स्तद् भद्रक छन्दः । दशभिर्द्वादशभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १६५ ॥

सप्तभेति—सप्तभिर्भगणैर्गुरुणा च मदिरा छन्दः ॥ १६६ ॥

सजता इति—सगणजगणातगणैः सगणाद्वयेन रगणाद्वयेन गुरुणा

लालित्यां भुजगेन्द्रेण भाषितमेतच्चेन्मसर स्तजनगवः ॥ १६८ ॥

(२३)

त्रयोविंशत्यक्षरा विकृति र्यथा—

नजभजभा जभौ लघुगुरु बुधौ निर्गदितेयमद्रितनया ॥ १६९ ॥

यदिह नजौ भजौ भजभल गा स्तदाश्वललितं हरार्कयतियुक् ॥ १७० ॥

मत्ताक्रीडं मौ त्नौ नौ न लौ गिति भवति वसुशर-दशयतियुतं ॥

(२४)

चतुर्विंशत्यक्षरा संस्कृति र्यथा—

भूतमुनीनैर्यतिरिह भतनाः स्मौ भनयाश्च यदि भवति तन्वी ॥

(२५)

पञ्चविंशत्यक्षराऽतिकृति र्यथा—

क्रौञ्चवदा भूमौ स्मौ न न ना न्गा

च महास्रग्धरा छन्दः । अष्टभिः सप्तभिः सप्तभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥

लालित्यमिति—मगण-सगण-रगण-सगणा स्तगण-जगणनगण-गुरुश्च यदि भवन्ति, तर्हि लालित्य छन्दः ॥ १६८ ॥

त्रयोविंशत्यक्षरेति—नजेति । यत्र नगणजगणभगणा जगण-भगणजगणा भगणलघुगुरुश्च भवन्ति, तदद्रितनया छन्दः ॥ १६९ ॥

यदिहेति—नगणजगणभगणजगण-भगणलघुगुरुश्च यत्र स्यु स्तदाश्वललितं छन्दः । एकादशभिर्द्वादशभिश्च यतिरित्यर्थः ॥ १७० ॥

मत्तेति—यत्र मगणद्वयं तगणो नगणचतुष्टयं लघुगुरुश्च भवति, तत् मत्ताक्रीडछन्दः । अष्टभिः पञ्चभिर्दशभिश्च तत्र यतिरित्यर्थः ॥ १७१ ॥

चतुर्विंशत्यक्षरेति—भूतमुनीति । यत्र भगणतगणनगणाः सगणो भगणद्वयं नगण-यगणौ चैते भवन्ति, पञ्चभिः सप्तभिः द्वादशभिश्च यतिः स्यात्तत् तन्वी छन्दः ॥ १७२ ॥

विषु शर वसु मुनि विरति रिह भवेत् ॥ १७३ ॥

(२६)

षड्विंशत्यक्षरोत्कृति र्थथा—

वस्वीशाश्वच्छेदोपेतं ममत न न-

युगरसलगै भुजङ्गविजृम्भितम् ॥ १७४ ॥

मो नाः षट् सगुगिति याद नवरस शर-

यतियुतम् अपवाहाख्यं ॥ १७५ ॥

एतानि पञ्चसप्तत्यधिकशतच्छन्दांसि ॥

अथ दण्डकाः (१७६—१८८)

यदिह न-युगलं ततः सप्तरेफा स्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो (१)

भवेद्दण्डकः ॥

प्रतिचरण विवृद्धरेफाः स्युरणौ

पञ्चविंशत्यक्षरेति—कौञ्चेति । यत्र भगण-मगणौ सगण-भगणौ चत्वारो नगणा गुरुश्चैते स्युः ; पञ्चभिः पञ्चभि रष्टभिः सप्तभिश्च यतिः, तत् कौञ्चपदा छन्दः ॥ १७३ ॥

षड्विंशत्यक्षरेति—वस्वीशेति । यत्र मगण-द्वयं तगण-नगण-त्रयं रगण-सगणौ लघुगुरु चैते भवन्ति, तद्भुजङ्गविजृम्भितछन्दः । अष्टभि रेकादशभिः सप्तभिश्च तत्र यतिः ॥ १७४ ॥

मो ना इति—यत्र मगणो न-गणषट्कं सगणो गुरुयुग्मञ्च भवति, तदपवाहाख्य छन्दः । नवभिः षड्भिः पञ्चभिश्च तत्र यतिः ॥

अथ दण्डका व्याख्यायन्ते—यदिहेति । नगण-द्वयेन रगणा-सप्तकेन च चण्डवृष्टिप्रपातो नाम दण्डकः ॥ १ ॥

ऽर्णव-व्यालजीमुत-लीलाकरोद्दाम-शङ्खादयः ॥ (२—८)

प्रचितक समभिधो धीरधीभिः स्मृतो

दण्डको न-द्वयादुत्तरैः सप्तभि यैः ॥ ९

यत्र दृश्यते गुरोः परो लघु क्रमात्

स कथ्यते बुधै रशोकपुष्पमञ्जरीति ॥ (१०)

सगणः सकलः खलु यत्र भवेत्तमिह प्रवदन्ति बुधाः कुसुमस्तवकं

यत्र रेफः परं स्वेच्छया गुम्फितः

स स्मृतो दण्डको मत्तमातङ्गलीलाकरः ॥ (१२)

प्रतिचरणेति—नगण-द्वय-रेफसप्तकानन्तरमेकैकरेफवृद्धौ क्रमाद-र्णादि नामानः सप्त दण्डका भवन्तीत्यर्थः । आदि पदान् पञ्चभौ रेफं रम्बुजो नाम दण्डकः । एकोनसहस्राक्षरो यावत्पादो भवेत् तावद् यथेष्ट-कल्पिताभिधानाः दण्डका भवन्ति । अभिधान-कल्पना चेयं—आरामसंभ्रामसुरामवैकुण्ठ-सोत्कण्ठ-सार-कासारेत्याद्याः । यदुक्तं 'एकोन-सहस्राक्षरपर्यन्ता दण्डकाङ्घ्रयः प्रोक्ताः । वर्णात्रिकगणवृद्ध्या नद्धि-तयाद्या महामतिभिरिति (२ ३ ४ ५ ६ ७ ८) ॥

प्रचितकेति—न-गणद्वयेन यगण-सप्तकेन च प्रचितकाख्यो दण्डक इत्यर्थः ॥ (९)

एवं नियतवर्णपादान् दण्डकानुक्त्वाथानियतवर्णपादां स्तानाह—यत्रेति । क्रमेण गुरु-लघ्वो र्यादच्छिदके निवेशेऽशोकपुष्पमञ्जरी नाम दण्डकमञ्जरीत्यर्थः ॥ (१०)

सगण इति—अनियतैः स-गणैः कुसुमस्तवकं नाम दण्डक इत्यर्थः ॥ (११)

यत्र रेफ इति—अनियतै र-गणै र्मत्तमातङ्गलीलाकरो नाम दण्डक इत्यर्थः ॥ (१२)

लघु गुरु निजेच्छया यदा निवेश्यते

तदैव दण्डको भवत्यनङ्गशेखरः ॥ (१३)

त्रयोदश दण्डकाः । इत्थं चाष्टाशीत्यधिकशतसंख्यानीमानि ॥ १८८ ॥

इति श्रीछन्दःकौस्तुभे वर्णच्छन्दसि समवृत्तारुया

द्वितीया प्रभा ॥ २ ॥

तृतीया प्रभा ।

अथार्द्धसममुदाह्रियते—

विषमे यदि सौ सलगा दले भौ युजि भाद् गुरुका-
बुपचित्रम् ॥ १ ॥ [द्विःपाठात् पद्यपूर्तिः ।]

विषमे प्रथमाक्षरहीनं दोषकमेव हि वेगवती स्यात् ॥ २ ॥

लघु रिति—लघु-गुर्वोः क्रमादैच्छिके निवेशे सत्यनङ्गशेखरारुया
दण्डक इत्यर्थः ॥ (१३)

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये

समवृत्त-व्याख्या द्वितीया प्रभा ॥ २ ॥

अथार्द्धसममिति विषमे प्रथमे पादे यदि सगणत्रयं लघु गुरु चैते
भवन्ति, युजि द्वितीये पादे भगणत्रयं गुरुद्वयं च स्यादिति दले पूर्वार्द्धे
लक्षणं । एतदेव परार्द्धे भवेद्वर्द्धसमवृत्त-प्रस्तावात् । अतः उक्तं—
द्विः पाठात् पद्य-पूर्तिरिति । एवं सर्वत्र ज्ञेयं । तदोपचित्र-छन्दः ॥

विषम इति—विषमे प्रथमे तृतीये च पादे लघु-द्वयं भ-गणद्वयं
गुरुद्वयं च भवति, द्वितीये चतुर्थे च भगण-त्रयं गुरुद्वयं च स्यात्तदा
वेगवती छन्दः ॥ २ ॥

अयुजि प्रथमेन विवर्जिताद् द्रुतविलम्बिततो हरिणप्लुता ॥ ३ ॥

विषमे ससजा गगौ समे चेत् सभराद् यः किल मालभारिणीयं ॥

भ-त्रयमोजगतं गुरुकौ चेद् युजि च न जौ ज्ययुतौ द्रुतमध्या ॥ ५ ॥

ओजे तपरौ जरौ गुरुश्चेन मसौ जगौ ग् भद्रविराड् भवेदनोजे ॥ ६ ॥

विषमे सजौ सगुरुयुक्तौ केतुमती समे भरनगाद् गुः ॥ ७ ॥

आख्यानकी तौ जगुरु गमोजे जतावनोज जगुरुगुरु श्चेत् ॥ ८ ॥

अयुजीति—अयुजि प्रथमे तृतीये च लघु-द्वयं भगणद्वयं रगण
स्यात्, द्वितीये चतुर्थे च न-गणो भ-गणद्वयं र-गणश्च स्यात्तर्हि
हरिणप्लुता ॥ ३ ॥

विषमे ससेति—प्रथम-तृतीययोः स-गणद्वयं जगणो गुरुद्वयञ्च
स्यात्, द्वितीय-चतुर्थयोस्तु स-गणभगणौ र-गण-यगणौ च स्यातां तर्हि
मालभारिणी छन्दः । [कालभारिणीति वृत्तरत्नाकर-परिशिष्टे] ॥ ४ ॥

भ-त्रयमिति—भ-गणत्रयं गुरुयुगलञ्च यद्योजगतं प्रथम-तृतीय-
पादगतं स्यात् ; युजि द्वितीये चतुर्थे च पादे न-गणो ज-गणद्वयं
यगणश्च भवेत्, तदा द्रुतमध्या छन्दः ॥ ५ ॥

ओजे तेति—ओजे प्रथमे तृतीये च पादे तगण-जगण-रगण-
गुरवः स्युः, अनोजे द्वितीये चतुर्थे च मगण-सगणो ज-गणो गुरु च
स्यातां तदा भवति भद्रविराट् छन्दः ॥ ६ ॥

विषमे सजाविति—प्रथमतृतीययोः सगण-जगणौ सगणौ सगुरु-
युक्तौ स गण-गुरु च स्यातां, द्वितीय-चतुर्थयोस्तु भगण-रगण-न-गण-
गुरुयुग्मं च स्युः, तदा केतुमती छन्दः ॥ ७ ॥

आख्यानकीति—प्रथम-तृतीययोस्त-गणद्वयं जगणो गुरुद्वयञ्च
स्यात्, द्वितीयचतुर्थयोस्तु जगणस्तगणो जगणो गुरुद्वयञ्च भवति, तदा
आख्यानकी छन्दः ॥ ८ ॥

जतौ जगौ गो विषमे समे स्यात्तौ जगौ ग एषा विपरीतपूर्वा ॥६॥

अयुजि ननरला गुरुः समे यदपरवक्तुमिदं नजौ जरौ ॥ १० ॥

अयुजि न-युगरेकतो य-कारो युजि तु नजौजरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

अयुजो यदि सौ जगौ युजोः सभरालगौ यदि सुन्दरी मता ॥१२॥

स्यादयुग्मके रजौ रजौ समे तु जरौ जरौ गुरुर्जवात * परामतीयं

त्रयोदशार्द्धसमानि ।

इति छन्दःकौस्तुभे वर्णच्छन्दसि अर्द्धसमवृत्ताख्या तृतीया प्रभा ॥३॥

जताविति—प्रथम-तृतीययो जगण-तगणौ जगणो गुरु चैतं भवन्ति, द्वितीय-चतुर्थयोस्तु त-गणद्वयं ज-गणो गुरुयुग्मञ्च स्यात्तदा विपरीतपूर्वा छन्दः ॥ ६ ॥

अयुजीति—प्रथमे तृतीये च न-गणद्वयं रगणो लघु गुरुश्च भवति, द्वितीये चतुर्थे च न-गणो जगण-द्वयं रगणश्च स्यात्तर्हि अपर-वक्तुच्छन्दः ॥ १० ॥

अयुजि नेति—प्रथमे तृतीये च द्वौ न-गणौ रगण-यगणौ च भवेतां, द्वितीये चतुर्थे च नगणो जगणद्वयं रगणो गुरुश्च तदा पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ ११ ॥

अयुजोरिति—यदि प्रथम-तृतीययोः सगणद्वयं जगणो गुरुश्च स्यात्, द्वितीय-चतुर्थयोस्तु सगण-भगण-रगणा गुरुर्लघु गुरुश्च भवेयुस्तदा सुन्दरी छन्दः ॥ १२ ॥

स्यादिति—अयुग्मके प्रथमे तृतीये च पादे रगण-जगणौ द्विः पठितौ स्यातां समे द्वितीये चतुर्थे च जगण-रगणौ द्विरुक्तौ गुरुश्चैकः, स्तदा जवपरामती छन्दः ॥१३॥ [वृत्तरत्नाकरटीकायां खलु यवमतीति नाम]

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते भाष्ये अर्द्धसमवृत्ताख्यानं तृतीयप्रभा ॥

* 'यवान्' इति श्रीनिवासपुस्तकालयग्रन्थे पाठभेदः ।

चतुर्थी प्रभा ।

अथ विषममुदाह्रियते—

प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यतः परम् ।

यद्यथ भनभगाः स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्गता ॥

'यद्यथ भनजल गाः स्युरथो'—इति तृतीयः कचित् ॥ १ ॥

त्रयमुद्गता-सदृशमेव पदमिह तृतीयमन्यथा ।

जायते रनभगैर्ग्रथितं कथयन्ति सौरभक मेतदीदृशम् ॥ २ ॥

न-युगं सकार-युगलञ्च भवति चरणं तृतीयकं ।

तदुदितमुरुमतिभिर्ललितं यदि शेषमस्य सकलं यथोद्गता ॥३॥

इत्युद्गता-भेदाः ॥

अथ क्रमप्राप्तानि विषमवृत्तानि वक्तुमारभते—अथ विषममिति । विषमवृत्तानि खलु त्रिविधानि भवन्ति । उद्गता-पदचतुर्द्वौपस्थित-प्रचुपितभेदात् । तेषु उद्गताभेदानाह—प्रथमे सेति । यस्य प्रथमे पादे सगण-जगणौ सगण-लघू च स्यातां, अतः प्रथमात् परं द्वितीये पादे नगण-सगणौ जगणगुरु च स्यातां, अथ द्वितीयानन्तरं तृतीये पादे यदि भगण-नगणौ भगण-गुरु च स्यातां, अथो तृतीयानन्तरं चतुर्थे पादे सगण-जगणौ द्विः पठितौ गुरुश्चैकः, तदुद्गता छन्दः ॥ १ ॥

त्रयमिति—यत्र त्रयं प्रथमद्वितीयचतुर्थात्मकं पादत्रयमुद्गतावदेव स्यात्, तृतीयं पादं रणभगैः ग्रथितं सदन्यथा जायते, तृतीये पादे रगण-नगणौ भगण-गुरु च स्यातामित्यर्थः, तत् सौरभकच्छन्दः ॥ २ ॥

न-युगलमिति—यत्र तृतीये पादे नगणद्वयं सगण-द्वयं च स्याद-वशिष्टं पादत्रयं उद्गतावद् भवेत्तदुरुमतिभिर्दुधैर्ललितच्छन्दः प्रोक्त-

आद्यः पादोऽष्टाभिर्वर्णैः स्ततोऽन्ये चतुरत्तरैः क्रमाद् वृद्धाः ।

पादा यस्य द्वितीयाद्याः षट्पञ्चाशद्वर्णा यत्र ।

तदिह विबुधजनैरुक्तं पदचतुरुर्द्धं नाम वृत्तम् ॥ (१)

आपीड इदमेवान्त्यौ वर्णौ चेद् गावथादिना ।

क्रमात् पादेन चेत् पादा द्वितीयाद्या स्त्रयस्तदा ॥

।मत्यर्थः ॥ ३ ॥

इत्युद्गता-प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ पदचतुरुर्द्धं छन्दो दर्शयति—आद्य इति । यस्याद्यः पादो वर्णैः रष्टभिः भवति, तत् आद्यादन्ये द्वितीयादयश्चयः पादाश्चतुर्भिर्वर्णैः क्रमाद् वृद्धा भवन्ति, तत् षट्पञ्चाशद्वर्णात्मकं पदचतुरुर्द्धमिति छन्दः स्यादित्यर्थः । एतदुक्तं यस्य भवति, प्रथमः पादोऽष्टवर्णः द्वितीयो द्वादशवर्णः तृतीयः षोडशवर्णश्चतुर्थो विंशतिवर्णस्तत् पदचतुरुर्द्धमिति । पादादि पादाः क्रमेण व्युत्क्रमेण वा चतुरुर्द्धानि चतुर्वर्णवृद्धानि यस्य तदिति विग्रहः । अत्र वर्णा गुरुलघुरूपा स्तिलतण्डुलवद् विमिश्रिता बोध्याः ॥ १ ॥

अथ तद्धेनानालक्ष्य निरपेक्षाणि लक्षणान्याहापीड इति । इदमेव पदचतुरुर्द्धमापीडः स्यात् चेत् यद्यन्तौ गौ गुरु स्यातामिति । अयमर्थः—पूर्वोक्ते पदचतुरुर्द्धे छन्दसि चेत् प्रतिपादस्यान्त्यवर्णद्वयं गुरु स्यादन्ये सर्वे वर्णा लघवः स्युस्तर्हि तदेवापीडच्छन्दः । यथा—

विहरति हरि रूचैः ब्रजविपिनमनु रसिकराजः ।

य उदित वरसुरभिमभि कलित माङ्गा

विरचयति बहुविधकुसुमचयमयमिह पीडं ॥ (२)

अथ चेदष्टवर्णवपुरापीडस्य प्रथमश्चरणो द्वितीय-तृतीय-चतुर्थेषु चरणेषु क्रमेण स्यात्तर्हि कलिका-लवलीमृतधाराख्यानि क्रमात्त्रीणि छन्दांसि भवन्तीत्यर्थः । अयमत्र निष्कर्षः—यद्यापीडस्य प्रथमद्वितीय-

कलिका लवली प्रोक्ताऽमृतधारा च सूरिभिः [२-४]

[लक्ष्यचतुष्टयमूह्य] इति पदचतुरुर्द्धभेदाः ॥

मसौ ज्भौ गौ प्रथमाङ्घ्रिरीक्ष्यते खलु यस्मिन् ।

गतौ चरणौ मिथो विपर्यस्तौ स्यातां तृतीय-चतुर्थौ तु यथावस्थितौ, तर्हि कलिका छन्दः । इयं मञ्जरीत्यपरे । यथा—

ब्रजविपिन मधिवसति सुभ्रु

रचित-कुसुमशेषा ।

मुरहर ! सुललित-मुखरुचिरतिकान्ति

स्वयि परिणहितमतिरुपप्लुत कमलकलिकासौ ॥ (३)

अथ यद्यापीडस्य प्रथमश्चरणं तृतीयस्थाने भवति, अन्यत् सर्वं यथावस्थितं, तर्हि लवली छन्दः । अयमत्र क्रमः—प्रथमो द्वादशवर्णः द्वितीयः षोडशवर्णः तृतीयोऽष्टवर्णः चतुर्थस्तु विंशतिवर्ण इति । यथा—

हरिचरणकमल-मधुमत्ता

तदमल मधुरगुणगणगुणनशीला ।

विरहविधुरचेता

निवसति भुवनमधिरुचि सुललितवलवली सा ॥ (४)

अथ यद्यापीडस्य प्रथमश्चरणश्चतुर्थस्थाने भवति, अन्यत् सर्वं पूर्ववत्, तर्ह्यमृतधारा छन्दः । अयमत्र क्रमः—प्रथमो द्वादशवर्णः, द्वितीयः षोडशवर्णः तृतीयो विंशतिवर्णश्चतुर्थस्त्वष्टवर्ण इति । यथा—

सुललिततनुरुचि रतिशीता

मदनमदमुदित हृदय नयनपद्मा ।

प्रियसखि ! मम मनसि निवसति वरवदनचन्द्रा

सततममृतधारा ॥ (५)

त्रितयं सनजर गा स्तथा ननौ सः ।

अथ न न न युत जयं ।

प्रचुपित मिदमुदितमुपस्थित-पूर्वम् ॥ (१) ॥

वर्द्धमानं तृतीयश्चेन्ननसै न नसै रिह ॥ (२) ॥

तजरस्तु शुद्धविराडार्णभं प्रथमे यतिः ॥ (३) ॥

[लक्ष्ययुग्ममूह्यं] इत्युपस्थितप्रचुपितभेदाः ।

अथोपस्थितप्रचुपितच्छन्दो दर्शयति — मूसौ जभाविति । यस्मिन् छन्दसि मूसौ जभावे गुरु चेति प्रथमाङ्घ्रिरोच्यते, त्रितयं द्वितीयाङ्घ्रि-
त्रितयं सनजरगा इति न नौ स इति ननन-युत जयं चेति क्रमान्
स्यात्, तदुपस्थितप्रचुपितच्छन्दः । यत्र मगण-सगणौ जगण-भगणौ
गुरु चेति प्रथमपादः । सगण-नगण-जगण-रगण-गुरव इति द्वितीयः ;
नगणद्वयं सगणश्चेति तृतीयः, नगणत्रयं जगण-यगणौ चेति चतुर्थः ॥ १

अथ तद्भेदावाह — वर्द्धमानमिति । इह पूर्वच्छन्दसि तृतीय-
पादश्चेत् द्विः पठितं ननसगणैः कल्प्येत, तर्हि तदेव वर्द्धमान छन्दः ।

यथा — गोविन्दे यदि ते मन स्तदाऽतिपवित्रं

प्रथितं सपदि यशोऽत्र वर्द्धमानं ।

यमिह निगमचयतो निखिलविवुध-निवहाः

परमपुरुषमनु निगदन्ति भजन्ते ॥ (२)

यदि तत्रैव पूर्वच्छन्दसि तगण-जगण-रगणौ स्तृतीयः कल्प्यते,
तदा तदेव शुद्धविराडार्णभच्छन्दः । उभयत्र प्रथमे पादे यति विरामः
स्यात् । यथा —

दिश्वस्मिन् वसतीह यः प्रभु मंहनीयो

यमिमं बहुमतमार्णभं वदन्ति ।

तं शुद्ध-विराट् परं प्रियं

विषमाक्षर-पादं वा पादैरसमं दशधर्मवत् ।

यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत् सूरिभिः प्रोक्तम् ॥ (१)

द्वादश विषमाणि ॥

इति छन्दःकौस्तुभे वर्णच्छन्दसि विषमवृत्ताख्या

चतुर्थी प्रभा ॥ ४ ॥

विमलमतिभिरनुगतमाशु भजध्वं ॥ (३)

अनयोद्दाहरणं ग्रन्थ-गौरवभयान्नकृतमित्याह — लक्ष्येति ।

इत्युपस्थितप्रचुपित-प्रकरणा-व्याख्यानम् ।

अथ गाथामाह — विषमेति । विषमाण्यक्षराणि येषु तादृशाः
पादा यस्मिन् स्तद् विषमाक्षरपादं छन्दो गाथा स्यात् । तथा सूत्रमेव —
तदष्टदशसप्तनवाक्षरपादं, तथा पादै रसमं विसदृशं त्रिषञ्चषडादिपाद-
मित्यर्थः । तदिदं स्वयमेव दर्शयति — “दशधर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र-
निबोध तान् । मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः भ्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः । स्वर-
माणश्च भीरुश्चालसः कामी च ते दश” — इति भारते । अत्र पाद-
त्रयात्मकं । पादे षट्कात्मकं वा गाथा छन्दः, अन्यदूह्यं । अपरञ्च
यदत्र शास्त्रे छन्दो नोक्तं, तत् सर्वं गाथेति सूरिभिर्वुधैः प्राक्तं बोध्यां ।
यद्यपि शेषछन्दसां गाथेत्येकैव संज्ञा कृता, तथापि छन्दश्चुडामण्यादि
ग्रन्थादोहक-प्रकीर्णकादि-संज्ञा बोद्धव्याः । ग्रन्थ-गौरवभयान्न न
विवृताः ॥

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये विषमवृत्ताख्याने

चतुर्थी प्रभा ॥ ४ ॥

पञ्चमी प्रभा ।

वक्त्रं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धे योऽनुशुभि ख्यातं ॥ १ ॥

युजो जेन सरिदुभर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितं ॥ २ ॥

ओजयो जेन वारिधे स्तदेव विपरीतादि ॥ ३ ॥

चपला वक्त्रमयुजो न-कारश्चेत् पयोराशेः ॥ ४ ॥

इदानीं वक्तु-प्रकरणं वक्तुं प्रारभते—वक्तूमिति । अनुशुभ्यष्टा-
क्षरायां जातौ पादस्याद्यात् प्रथमादक्षरात् परौ नसौ नगण-सगणौ न
स्यातां । अन्ये मादयः षड्गणाः यथेष्टं स्युः । तथाब्धे श्रुतार्थाद-
क्षरात् परो यगणः स्यादेवं चतुर्भिः पादैर्दत्तं छन्दः ख्यातं प्रसिद्धं ।
अनुशुभीत्याप्रकरणं, तेनाष्टमोऽपि वर्णः प्राप्तः ॥ १ ॥

युजो जेनेति—युजो द्वितीय-चतुर्थयोः पादयोः सरिदुभर्तु-
दक्षरात् परवर्तिना जगणेन पथ्यावक्त्रं छन्दो भवति । शेषौ पादौ
वक्तवत् । सर्वेषु पादेषु आद्यान्नसौ न कार्यौ । सामान्येन पूर्वोक्ता-
पवादाभावात् । एवमग्रिमोऽपि व्याख्येयम् ॥ २ ॥

ओजयो जेनेति—ओजयोः प्रथम-तृतीयपादयो विषमयो वारिधे
श्रुतार्थादक्षरात् परवर्तिना जगणेन तत् पथ्यावक्त्रं विपरीतादि भवति,
विपरीतपथ्यावक्त्रं नाम छन्दः स्यात् । शेषौ पादौ वक्तवत् ॥ ३ ॥

चपलावक्त्रमिति—प्रथम-तृतीययोः पादयोः विषये पयोराशे
श्रुतार्थादक्षरात् परश्चेन्नकार खिलघु न-गणः स्यात्, तदा चपलावक्त्रं
छन्दः । शेषौ पादौ वक्तवत् ॥ ननु न-विपुलेयं चपला वक्त्रेण
संकीर्णा, उभयत्र विषमपादयो रम्बुधे नगणादिति चेन्मैवं । पूर्वस्यां
समपादयो रन्ध्रत स्तगणाः, परस्मि स्तगणा इत्यसाङ्कर्यात् ॥ ४ ॥

अस्यां लः सप्तमो युग्मे सा युग्मविपुला मता ॥ ५ ॥

सैव तस्याखिलेष्वपि ॥ ६ ॥

[अयुजो रित्यापूर्त्तोरनुवर्त्यम्]

भेनाविधतो भाद्विपुला ॥ ७ ॥

इत्थमन्या र श्रुतार्थात् ॥ ८ ॥

नोम्बुधे श्चेन्नविपुला ॥ ९ ॥

अस्यां ल इति—यस्यामनुशुभि युग्मे द्वितीये चतुर्थे च पादे
सप्तमो वर्णो लघु भवति, तद् युग्मविपुला छन्दः । शेषौ पादौ वक्तवत् ।
अथवा युग्मेति स्वमित्रस्य कवेः सम्बोधनं, तेन विपुला छन्द इत्यर्थः ।
न चेन्न पथ्या-वक्त्रेण मतार्थेति वाच्यं, तस्मिन् युक् पादयो श्रुतार्थादक्षरात्
जगणः आवश्यकः । अस्यान्तु तयोः सप्तमलघुत्वमावश्यकं । तत्त्वं
च तमणादिभिरपि सिध्येदित्यसाङ्कर्यात् । विपुलाभेदेऽप्युक्पादयो
भादिभि र्य-गणमपवदिष्यति । पथ्यावक्त्रे तु जगण एव तयोस्वतिष्ठते ।

सैव तस्येति—सैव तस्याचार्यस्य मते लघुसप्तमै श्रुतिभिरपि पादै
विपुला छन्दः स्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

भेनाविधत इति—अयुजो नकार श्चेदित्यस्मादयुजो रित्यनुवर्तते ।
अयुजोः प्रथम-तृतीययोः पादयो रन्ध्रत श्रुतार्थवर्णाद्यादि य-गणं बाधित्वा
अकारः स्यात्तदा भ-विपुला नाम छन्दः । युजोस्तु सप्तम-लघुत्वमस्त्ये-
वेति बोध्यं । एवमग्रिमेषु च । यदुक्तं—‘ओजे तुर्थाक्षतभरमसै
न-विपुलादयः । अस्त्वोजे प्राय स्तुर्ये गु र्युजि षड्भ्यो लघु ध्रुव’ इति ॥

इत्थमिति—अयुक् पादयो श्रुतार्थादक्षरात् यदि र-गण स्तदान्या
र-विपुलेत्यर्थः ॥ ८ ॥

नोम्बुधेरिति—अयुक्पादयो श्रुतार्थादक्षरात्तदगणश्चेत्तदा न-
विपुला छन्दः ॥ ९ ॥

तोऽवधे स्तपूर्वाभ्या भवेत् ॥ १० ॥

दश वक्त्रभेदाः ।

इति छन्दःकौस्तुभे वक्त्रनिरूपणं पञ्चमी प्रभा ॥ ५ ॥

षष्ठी प्रभा ।

अथ मात्रावृत्तोष्वायां तावदाह—

लक्ष्मैतत् सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।

षष्ठो जो नलघु वा प्रथमेऽर्द्धे नियतमार्यायाः ॥ १ ॥

तोऽवधिरिति—अयुक्पादयोश्चतुर्थाद्वरात्तगणश्चेत्तदा त-विपुला
छन्दः ॥ १० ॥

इदं वक्त्रप्रकरणं मात्रा छन्दः केचिदाहुः । अत्र तु वर्णच्छन्दः
कथितं, तत्वेप्युपपत्तेः । अत उभयान्तराले पठितमेतत् ॥

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये

वक्त्रनिरूपणं पञ्चमी प्रभा ॥ ५ ॥

वर्णमात्राविभेदेनेति क्रमप्राप्तानि वर्णच्छन्दांस्यभिधाय इदानीं
तत्क्रमप्राप्तानि मात्राछन्दांस्यभिधान् स्तेषु तावदाय्याप्रकरणं वक्तुमार-
भते—अथ मात्रावृत्तोष्वायि । आर्यादिषु संस्थिताश्चतुःकलाः पञ्चगणा
ज्ञेया इत्युक्तेश्चतुर्मात्रगणानामयं विषयो बोध्यः । लक्ष्मैतदिति—
आर्यायाः प्रथमेऽर्द्धे आद्ये दले एतन्नियतं लक्ष्म लक्षणं भवति । एतत्
कर्मित्याह—गोपेताः सप्तगणा इति यत् चतुः कलाः सप्तगणाः सगुरवः
पूर्वार्द्धे नियमाद् भवन्तीत्यर्थः । अत्रापवादः—इह आर्यायां विषमे
प्रथमे तृतीयपञ्चमसप्तमरूपे गणे जगणो मध्यगुरुगणो न भवति । अत्र

SSSSSSSS

षष्ठे द्वितीयलात् परके नले मुखलाच्च स यति-पदनियमः ।

चरमेऽर्द्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः ॥ २ ॥

तद्भेदानाह—

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च ।

गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्या गीतिश्च नवधार्या ॥ ३ ॥

ताः क्रमेणाह—

प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयो रुभयोः प्रकीर्तिता पथ्या ॥ १ ॥

[न्यूनं प्रकल्प्य-लक्ष्यं बोध्यं, एवमग्रेषु च ।]

प्रथमेऽर्द्धे षष्ठो गणो जः स्यान्मध्यगुरुगणः स्यात् । अथवा न
लघू स्यातां चतुर्लघुगणः स्यादित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ यतिमाह—षष्ठे इत्यादिना । द्वितीयलादिति ल्यब्लोपे कर्मणि
पञ्चमी । षष्ठे गणे नले चतुर्लघौ सति द्वितीयलात्द्वितीयलघुमारभ्य
यतिपदनियमो भवति । षष्ठस्य चतुर्लघो गणस्य प्रथमलध्वनन्तरं यति-
सहितं पदं नियमेन समाप्यत इत्यर्थः । तथा परके सप्तमे नले सति
षष्ठात् परस्मिन् सप्तमे गणे चतुर्लघौ सति मुखलादादि लघुमारभ्य
यतिपदनियमः षष्ठगणान्ते यतिरित्यर्थः । अथोत्तरार्द्धयतिस्थानमाह—
चरमेऽर्द्धे द्वितीये दले पञ्चमके गणे नले सति तस्मान् मुखलादादिलघु-
मारभ्य स यतिपदनियमः चतुर्थगणान्ते यतिरित्यर्थः । इह द्वितीयेऽर्द्धे
षष्ठो गणो लगण एव लकारैवैकः प्रयोज्यो न तु चतुष्कल इति पूर्वार्द्ध-
विशेषः । पूर्वार्धे त्रिंशत्कलाः, परार्द्धे तु सप्तविंशतिरिति सप्तपञ्चाशन्मात्रा
छन्दः ॥ २ ॥

अथार्या-विशेषान् वक्तुं ता स्तावदुद्दिशति—तद्भेदानिति ।
आह उद्दिशतीत्यर्थः । नाममात्रेण वस्तु-संकीर्तनं ह्युद्देशः ॥ ३ ॥

तासां लक्षणानि क्रमाद् दर्शयितुमारभते—ताः क्रमेणाहेति ।

संलङ्घ्य गणत्रयमादिमं शकलयो द्वयो भवति पादः ।
 यस्या स्तां पिङ्गलनागो विपुला मिति समाख्याति ॥ (२)
 दलयो द्वितीयतूर्यौ गणौ जकारौ तु यत्र चपला सा ॥ (३)
 आद्यं दलं समस्तं भजेत लक्ष्म चपला-गतं यस्याः ।
 शेषं पूर्वजलक्ष्मा मुखचपला सोदिता मुनिना ॥ (४)
 याऽऽर्याद्यदलगमर्द्धं प्रथमेऽ प्रथमे दले तु चपलायाः ।
 लक्ष्माश्रयेत सोक्ता विशुद्धधीभिर्जवनचपला ॥ (५)
 आर्या प्रथमार्द्ध-समं यस्यामपरार्द्धमाह तां गीतिम् ॥ (६)
 आर्या-परार्द्धतुल्ये दलद्वये प्राहु रूपगीतिम् ॥ (७)

आह लक्ष्यतीत्यर्थः । प्रथमेति—यस्या उभयोरपि दलयोः प्रथमे गण-
 त्रये यतिः स्यात्, सा पठ्योच्यते । उत्तरार्द्धे प्रकल्प्यलक्ष्यं बोध्यं ॥ १

यस्या आदिम-गणत्रयं संलङ्घ्यातिक्रम्य द्वयोरपि दलयोः पादो
 यति भवति, तां विपुलामिति नागः पिङ्गलः समाख्याति वदतीत्यर्थः ॥ २

दलयोरिति—यस्या द्वयोर्दलयो द्वितीय-तूर्यौ गणौ जकारौ
 मध्यगुरु स्यातां, सा चपलोच्यते । उत्तरार्द्धे कल्पयित्वा लक्ष्यं बोध्यं ॥ ३

आद्यमिति—यस्या आद्यं दलं पूर्वार्द्धे चपलाया लक्षणमाश्र-
 येत्, शेषं उत्तरार्द्धे तु पूर्वजलक्ष्माया उत्तरार्द्धलक्षणभाक् स्यात्, सा
 मुखचपला मुनिना काश्यपेनोक्तेत्यर्थः ॥ (४)

येति—या प्रथमेऽर्द्धे आर्याद्यदलगं लक्ष्माश्रयेत्, आर्या-
 पूर्वार्द्धलक्षणं भजेत्, अप्रथमे द्वितीयेर्द्धे तु चपलाया लक्ष्माश्रयेत् चिह्नं
 प्राप्नुयात् सा जवनचपला विशुद्धधीभी रुक्ता । मुखचपलैव व्यत्यय-
 रचिता सती जवन-चपला भवतीत्यर्थः ॥ (५)

आर्येति—यस्यां दलद्वयमार्या-पूर्वार्द्ध-लक्षण-घटितं स्यात्,
 सा गीतिरित्यर्थः । षष्ठिमात्रं छन्दः । द्विः पाठात् पद्यपूर्तिः ॥ (६)

आर्या शकल-द्वितये विपरीते न पुन रिहोद्गीतिः ॥ (८)
 आर्या प्राग्दलमन्ते ऽधिक-गुरु तादृगपरार्द्धमार्यागीतिः ॥ (९)

नवार्याभेदाः ।

अथ वैतालीयम् ।

षड् विषमेऽष्टौ समे कला स्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः ।
 न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेन्ते रलौ गुरुः ॥ १ ॥

आर्या परार्द्धेति—यस्यामार्योत्तरार्द्धघटितं दलद्वयमपि स्यात्,
 सोपगीतिरित्यर्थः । चतुःषष्ठाशन्मात्रं छन्दः । द्विः पाठात् पद्यपूर्तिः ॥ ७

आर्या शकलोति—आर्याखण्डद्वये व्यत्ययेन रचिते सत्युद्गीतिः
 स्यात् । पूर्वार्द्धे सप्तविंशतिमात्राः, परार्द्धे त्रिंशदित्यर्थः । उत्तरार्द्धे
 प्रकल्प्य-लक्ष्यं बोध्यम् ॥ (८)

आर्या प्रागिति—यद्यार्या प्राग्दलमन्तेऽधिकगुरु स्यात्, अप-
 रार्द्धमपि तादृगेव भवेत्, तर्ह्यार्यागीतिः । अस्यां दलद्वयमष्टाष्टगणाङ्क-
 चतुःषष्ठिमात्रं छन्दः । द्विः पाठात् पद्यपूर्तिः ॥ (९)

इत्यार्या-प्रकरणं व्याख्यातम् ।

अथ वैतालीयं छन्दो दर्शयति—षडिति । वैतालीये छन्दसि
 विषमे प्रथम-तृतीयरूपे पादे षट्कला षण्मात्राः स्युर्भवेयुः । समे
 द्वितीयचतुर्थरूपे पादेऽष्टौ कलाः स्युः । अन्ते षट्कलानामष्टकलानाञ्चा-
 वसाने रलौ गुरुः रगण-लघुगुरुवश्च स्युरित्यर्थः । अत्र विशेष-नियम-
 माह—समे पादे ता अष्टौ कला निरन्तरा नो स्युः, अव्यवहिताः केवल-
 लघवा न स्युः, किन्तु गुरुलघुमिश्रा गुरुरूपा वा स्युरिति यावत् । अत्र
 वैतालीये चतुर्षु पादेषु समा कला पराश्रिता न भवति, द्वितीय-चतुर्थादि-
 रूपा कला तृतीयपञ्चमादिरूपया कलया सह गुरु न कस्येत्यर्थः ।
 विषमे तु यथारुचि बोध्यम् ॥ १ ॥

स्यातामन्ते रयौ गणौ चेदौपच्छन्दसिकं तदाह वृत्तं ॥ २ ॥
 आपातलिका कथितेयं भादु गुरुकावथ पूर्ववदन्यत् ॥ ३ ॥
 तृतीययुग् दक्षिणान्तिका समस्तपादेषु द्वितीय-लः ॥ ४ ॥
 उदीच्यवृत्ति द्वितीय-लः सक्तोग्रेण भवेद्युग्मयोः ॥ ५ ॥
 पूर्वेण युतोऽथ पञ्चमः प्राच्यवृत्ति रुदितेह युग्मयोः ॥ ६ ॥

अथ वैतालीय-विशेषा नाह—स्यातामिति । विषमे षट् कलाः, समेत्वष्टौ, ततो रगण-यगणौ चेद्व्रतः, रगण-लघुगुरुणां स्थाने चेद् रगण-यगणौ स्यातां, तदौपच्छन्दसिकं वृत्तमाह पिङ्गलः ॥ २ ॥

आपातलिकेति—विषमे षट् कलाः, समे त्वष्टौ, ततो यदि भगणौ गुरुयुग्मं च भवेत्, अन्यत् सर्वं पूर्ववत् ; तदापातलिका छन्दः ॥ ३ ॥

तृतीयेति—वैतालीयादीनां छन्दसां चतुर्षु पादेषु यदि द्वितीयल स्तृतीययुग् भवति, प्रथमालघोः परो गुरुर्भवति, तदा दक्षिणान्तिकाछन्दः । इमं छन्दोभेदमारभ्याग्रे 'न समात्र पराश्रिता कले'त्यस्यापवादः । वैतालीयदक्षिणान्तिका, औपच्छन्दसिक-दक्षिणान्तिका, आपातलिका-दक्षिणान्तिका चेति त्रिभेदं तद् बोध्यं । लक्ष्याणि कल्प्यानि ॥ ४ ॥

उदीच्येति—प्रयुग्मयो विषम-पादयो द्वितीयलघु श्वेदग्रेण तृतीयेण युक्तो भवति, तदोदीच्यवृत्ति नाम छन्दः । समयो स्तु वैतालीयादिवत् । वैतालीयोदीवृत्तिः, औपच्छन्दसिकोदीच्यवृत्तिः, आपातलिकोदीच्यवृत्तिश्चेति त्रिविधमिदं बोध्यम् । लक्ष्याणि कल्प्यानि ॥ ५ ॥

पूर्वेणेति—युग्मयोः समपादयोः पूर्वेण चतुर्थेन लघुना यदि पञ्चमो लघु युक्तः स्यात्, मात्रात्रयात् पर श्वेद् गुरुः स्यादित्यर्थः, तदा प्राच्यवृत्तिः । छन्दसि विषमयोस्तु वैतालीयादिवत् । वैतालीय-प्राच्यवृत्तिः, औपच्छन्दसिक-प्राच्यवृत्तिः, आपातलिकाप्राच्यवृत्तिश्चेति त्रिभेदं तद्बोध्यम् । लक्ष्याणि कल्प्यानि ॥ ६ ॥

यदा समावोजयुग्मकौ पूर्वयो भवति तत् प्रवृत्तकं ॥ ७ ॥
 अस्य युग्म-रचिताऽपरान्तिका ॥ ८ ॥
 अयुग्मजा चारुहासिनी ॥ ९ ॥

नव वैतालीयभेदाः ॥

इति छन्दःकौस्तुभे मात्राछन्दस्यार्या-वैतालीय-निर्णयः षष्ठी प्रभा ॥ ६

सप्तमी प्रभा ।

अथ पञ्कटिका ।

प्रतिपदयमकित-षोडशमात्रा नवमगुरुत्व-विभूषितगात्रा ।

यदा समेति—ओजयुग्मकौ विषमसमौ पादौ पूर्वयोरुदीच्यवृत्ति-प्राच्यवृत्त्योः समौ तुल्यलघणौ स्यातां, विषमे पादे द्वितीयाग्रेण युतः, समे पादे चतुर्थो लघुः पञ्चमेन युतः स्यादित्यर्थः, तदा प्रवृत्तक छन्दः । वैतालीय-प्रवृत्तकमौपच्छन्दसिकप्रवृत्तकमापातलिकप्रवृत्तकञ्चेति त्रिभेदं तद् बोध्यं । लक्ष्याण्युक्तानि ॥ ७ ॥

अस्येति—अस्य प्रवृत्तकस्य युग्मैः समपादै रचिता अपरान्तिका भवेत् । त्रिविधैषा बोध्या—वैतालीय-प्रवर्तकापरान्तिका, औपच्छन्दसिकप्रवर्तकापरान्तिका, आपातलिका-प्रवर्तकापरान्तिका चेति ॥ ८ ॥

अयुगिति—अस्य इत्यनुवर्तनीयं । प्रवर्तकस्यायुगभवा विषमपादजाता चारुहासिनी भवेत् । त्रिविधैवेयं—वैतालीयप्रवर्तक-चारुहासिनीत्यादिभेदात् ॥ ९ ॥

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये

वैतालीय-प्रकरण-व्याख्यानं षष्ठी प्रभा ॥ ६ ॥

अथ संकीर्णानि मात्रावृत्तानि दर्शयति—प्रतिपदेति । यत्र

पञ्कटिका पुनरत्र विवेकः कापि न मध्यगुरु गण एकः ॥ १ ॥

मात्रासमकं नवमो लान्तं ॥ २ ॥

जो न्तावथाम्बुधे विश्लोकः ॥ ३ ॥

तद्युगलाद् वानवासिका स्यात् ॥ ४ ॥

वाणाष्टनवसु यदि ल चित्रा ॥ ५ ॥

नवमे भवति गुरा वुपचित्रा ॥ ६ ॥

प्रतिपादं षोडश मात्राः स्युः, तासु नवमी मात्रा दशम्या मात्रया सह गुरुरूपा भवति, यत्र मध्यगुरुगणो न स्यात्, तत् पञ्कटिका छन्दः इत्यर्थः । नवमगुरुत्वं कचिद्व्यभिचरति । इमाः षोडश मात्रा मात्रासमादिपादेष्वधिक्रियन्ते यावत् पादाकुलकमिति बोध्यं ॥ १ ॥

तान्येवाह—मात्रेति । षोडशभि मात्राभिरिह चतुःकला श्रत्वारो गणा बोध्याः, तेषु नवमी मात्रा लघुश्च भवति, तर्हि मात्रा-समकं छन्दः । तच्च गन्तं गुर्वन्तं बोध्यम् ॥ २ ॥

जोन्ताविति—यस्य पादेष्वम्बुधे मात्रा-चतुष्टयात् परो जगणः स्यादथवा न्तौ चतुर्लघुगणः स्यात्, स विश्लोको नामेत्यर्थः । द्वितीयं लक्ष्यं कल्प्य । ध्येयो मधुरिपु रात्म-सुखार्थमिति ॥ ३ ॥

तद्युगलादिति—तद्युगलादम्बुधि-द्वयान् मात्राष्टकादित्यर्थः यदि जोन्ता वा भवति, तदा वानवासिका छन्दः । द्वितीयं लक्ष्यं कल्पनीयं । लोकहितार्था गिरिधरमूर्त्ति रिति ॥ ४ ॥

वाणेति—यदि पञ्चमः अष्टमो नवमश्च लघुः स्यात्तदा चित्रा छन्दः ॥ ५ ॥

नवमे भवतीति—नवमी मात्रा यदि दशम्या सह संयुज्य गुरुः स्यात्तदोपचित्रा छन्दः ॥ ६ ॥

अष्टाभ्यो भाद् गावुपचित्रा ॥ ७ ॥

यदतीतकृतविविध लक्ष्मयुतैर् मात्रासमादि-पादः कलितं ।

अनियतवृत्त-परिमाण-सहितं प्रथितं जगत्सु पादाकुलकं ॥ ८ ॥

अष्टौ पञ्कटिकादि-भेदाः ॥

अथ रोलादिच्छन्दांसि ।

प्रतिचरणं रसगुणितजलधि (२४) कलिका-परिखचितं ।

रोला नामक वृत्तमिदं फणिनायक-रचितम् ॥

एकाधिकदशविरति-युतं जनहृदयाहरणं ।

मृदुलपदावलि-ललितमखिल-कवि-कण्ठाभरणम् ॥ १ ॥

[इदं काव्यमित्यन्ये ।]

भेदान्तरमाह—अष्टाभ्य इति । यदि मात्राष्टकाद् भ-गणो गुरुद्वयञ्च स्यात्, तदोपचित्रा छन्दः ॥ ७ ॥

यदतीतेत्यादि—यदतीतैः प्रागुक्तैः कृतैर्विविधैर् लक्ष्मभि युतैः पूर्वोक्तैर् मात्रासमादीनां पादैः कलितं निर्मितं जगत्सु पादाकुलकं छन्दः प्रथितं ख्यातं ; तत् कीदृगित्याह—अनियतेति । नियतैकलक्षणहीनं द्विकत्रिकचतुष्क-संयोगाद् बहुविधं तदित्यर्थः । परिमाण-सहितं षोडश-कल्पदत्त्वेन युक्तं, विशेषणयोः कर्मधारयः । तत्र द्विकसंयोगे मात्रा-समकस्य पादत्रयं विश्लोकस्यैकः पादः, त्रिकसंयोगे मात्रासमकस्य पाद-द्वयं विश्लोकस्यैकपादः, वानवासिकादीनां तिसृणामन्यतमस्यैक इति । चतुष्कसंयोगे तु सूत्रमेवोदाहरणं बोध्यं । मात्रासमक-विश्लोकवान-वासिकोपचित्राणां पादैर् निर्मितत्वात् ॥ ८ ॥

[मात्रासमादि-प्रकरणं व्याख्यातं ।]

अथ रोलादि छन्दांसि दर्शयति—प्रतिचरणमिति । यदि

अधिका दश विरचय कला मुहु रेकादश धाम ।
 इति दलयुग्मयुतं कलय वृत्तं द्विपथा नाम ॥ २ ॥ दोहेत्यन्ये ॥
 एकादश कुरु तात पुनरिह शिखिदश (१३) तनु कलाः ।
 सोरठ्ठेति सुजातमुपनय वृत्तमुदाररुचि ॥ ३ ॥
 कुरु सप्तचतुष्कलमतिशय-निर्मलमन्ते गुरुमुपनीतं ।
 जगतीह चतुष्पद नाम सुशर्मदमहिपतिना परिगीतं ॥
 त्रिशत्कलपीनं जगणविहीनं दिग्बसुरवि-सविरामं ।
 बुध-संसदि पठितं नवरसघटितं वितरति कवये कामं ॥ ४ ॥
 षट्पद नामक वृत्तमिदं फणिमणिरनुगायति ।

चत्वारः पादाश्चतुर्विंशतिमात्रानिर्मिता भवन्ति, तेष्वेकादशमात्रायां यतिः
 स्यात्तदा रोला छन्दः । षण्णवतिमात्रमेतत् । केचिदिदं काव्यं वदन्ति ।
 स्फुटमन्यत् ॥ १ ॥

अधिकेति—यस्य त्रयोदशभि रेकादशभिश्च कलाभिः पूर्वार्द्धं,
 तथोत्तरार्द्धं च, तद् द्विपथा छन्दः । दोहेत्यन्ये । यथा—

चरण-सरोरुहमस्तु हृदि मद्वचने तव नाम ।

चक्षुषि रूपं यावदसु रमय मनो मम राम ॥ २ ॥

एकादशेति—हे तातेति सम्बोधनं । शिखिदशेति शिखिनो
 वह्नय रते च त्रय एवाहवनीयादयः, तेन त्रयोदशेत्यर्थः । तनु विस्तारय ।
 सुजातं कोमलं उपनय जानीहि । द्विपथाद्विपरीता सती सोरठ्ठच्छन्दो
 भवेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

कुरु सप्तेति—यस्य चत्वारोऽपि पादा त्रिंशन्मात्रा-विरचिताः
 स्यु स्तेषु दशभि रष्टभि र्द्वादशभिश्च यतिः स्यात्तच्चतुष्पदं छन्द इति ।
 स्फुटमन्यत । विंशत्यधिकमात्रमिदं छन्दः ॥ ४ ॥

षट्पदेति—यदि चत्वारः पादाश्चतुर्विंशतिमात्रा-विरचिता

सचतुर्विंशति रत्र कला लसदेकादशयति ॥
 ईदृशचरणचतुष्कमुपाहित-कविकुलमोदं ।
 रसिक-सभाजन-चित्तहरं परिशमित-वितोदं ॥
 अन्त्याङ्घ्रियुगलमत्र चकास्ति वसु-विंशति-कलिकाचितं ।
 कुरु पञ्चदशे विरति श्रितं श्रवणादपि विदुषां हितम् ॥ ५ ॥
 कुण्डलिका सा भण्यते प्रथमं ।
 द्विपथा यत्र रोलाचरण-चतुष्टयं ॥
 विलसाति विशदं तत्र पदावलि रति मृदुयमिका
 अष्टपदी या भजति निखिलजन-सम्मदगमिका ॥
 अष्टपदीया भजति विबुध-सुमनोमण्डलिका
 लाटानुप्रासधरा च रसिककर्णे कुण्डलिका ॥ ६ ॥

भवन्ति, तेष्वेकादश्यां मात्रायां यतिः, चतुर्णां पादानामन्ते द्वौ पादावष्टा-
 विंशतिमात्रा-रचितौ स्यातां, तयोः पञ्चदश्यां मात्रायां यति भवति, तर्हि
 षट्पद नामकं छन्दः स्यात् । स्फुटमन्यत् । द्विपञ्चाशदधिकशत-
 मात्रमिदं ॥ ५ ॥

कुण्डलिकेति—सा कुण्डलिका भण्यते तदाख्यं छन्दः कथ्यते
 इत्यर्थः । का सेत्याह यत्र—प्रथमं द्विपथा स्यात्, तदुत्तरं रोला-चरण-
 चतुष्टयं च । इत्थं याष्टपदी सती वसति वर्तते, या विबुधसुमनः
 पण्डितसुचितं भजति ; या कीदृशीत्याह—अष्टपदीयेति । अष्टभिः
 पद्भिश्चरणैः शोभां याति प्राप्नोति तथा । पुनः कीदृशीत्याह—मण्डलि-
 केति । मण्डलिका मण्डलाकारा, आवृत्या पाठात् । पुनः कीदृशी-
 त्याह—लाटेति । लाटानुप्रासवतीत्यर्थः । पुनः कीदृशीत्याह—रसि-
 केति । रसिकानां कर्णकुण्डलरूपा, तैरतिप्रीत्या श्रोतव्या इत्यर्थः ।
 अष्टपदीयेत्यादौ यमकं, अर्थभेदसत्त्वात् । अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां
 या पुनः श्रुतिः यमकं पादतन्नागवृत्ति तद् यात्यनेकतामिति' तल्लक्षणात् ।

रसनिहत-दशक-परिमितकलमधिकयुगलकलमिह भवति ।

शिखा मुनिहत-युगलघु सकल मिषु-हतरसलघु परमपि गुरुयुत-

मुभयतः ॥ ७

यस्याः पूर्वाद्धैऽष्टौ द्विर्गाः प्रोक्ता साऽनङ्गक्रीडाख्या ।

युग-निहतवसु-लघुकृतमपरदलमथ युग-हत-षडधिकदशकलमिह ॥

विलसति विशदं तत्रेत्यादौ लाटानुप्रासः, सम्बन्धिभेदेन तात्पर्यमात्र-
भेदात् । 'शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः' इति तल्लक्षणात् ॥

रसेति—रसैः षड्भिर्निहतं गुणितं यद्दशकं तत्परिमिताः कला
मात्रा यस्यां भवनक्रियायां तद् यथा स्यात्तथा । अधिके युगले कले
द्वे कले यस्यां तद् यथा स्यात्तथेति । इह जगति शिखा छन्दो भवति ।
रसनिहतदशकेति षष्टिः कलाः । अधिकयुगलेति द्वे कले, इत्थञ्च
द्वापष्टिमात्रं शिखा छन्दः । इत्थं मात्रासंख्यामुक्त्वा वर्ण-स्वरूपमाह—
मुनीत्यादि । मुनिभिः सप्तभिर्हंतानि गुणितानि युगानि चत्वारः
अष्टाविंशतिरित्यर्थः । तत्परिमिता लघवो यस्मिन् स्तत् । ईदृक् पूर्व
सकलं । इषु हत-रसलघु इषुभिः पञ्चभिर्हता रसा स्त्रिशदित्यर्थः ।
तत्परिमिता लघवो यत्र तादृक् उत्तरदलमित्यर्थः । उभयत
उभयां गुरुयुतं शकलद्वयमपि प्रान्तेन गुरुणा युतमित्यर्थः । प्रथमे
दलेऽष्टाविंशतिर्लघवः, प्रान्ते गुरुद्वितीये तु त्रिंशल्लघवः प्रान्ते गुरुरिति ॥

यस्या इति—यस्याः पूर्वाद्धै द्विः पठिता अष्टौ गाः गुरवः षोडश-
गुरवो भवन्ति, यस्याः अपरदलमुत्तरार्द्धः युगनिहत-वसुलघुकृतं युगै
श्रुतुभिर्निहता गुणिता वसवोऽष्टौ द्वात्रिंशदित्यर्थः तत्संख्यकैर्लघुभिः कृतं
निर्मितं भवति, साऽनङ्गक्रीडा प्रोक्ता । पूर्वदले षोडशगुरवः, परदले
तु द्वात्रिंशल्लघवः, इत्यर्थः । मात्रावृत्तत्व-संपादनायाह—अथ युगेति ।
युगैश्चतुर्भिर्हता गुणिता ये षडधिका दश षोडश तत्संख्यकाः कला
यस्यां प्रवचन-क्रियायां तद् यथा स्यात्तथेति चतुःषष्टिमात्रं छन्दः ॥ ८ ॥

प्रथममिषुनिहत-रस लघु-गुरुकृतमपरमपि दलमतिसुललितपदं ।

गुणहत-नव लघुगुरु-युगलमिह रस-हतदशगुणकलमिति खञ्जा ॥ ९

सप्तचतुष्कल-गणकृतदलयुगमन्त्यनिवेशित-गुरु-मधुरा ।

न रचय जगणमिहेति फणीश्वर-गदितमिदं वृत्तं रुचिरा ॥ १० ॥

पञ्चाधिकदश घटय कला मुखगौरवाः ।

धेहि ततो जगणश्च गुरुश्च सुसौरभाः ॥

एवञ्चरणचतुष्कमाह कविदत्तके ।

पिङ्गलमुनिरिह सुमुखि प्रवङ्गम वृत्तके ॥ ११ ॥

षोडशकल-चरणं भुवि संप्रति मोद-विवर्द्धक मखिलजनं प्रति ।

शेष-यमक-लघुयुगलमनोहर मरिल नाम किल वृत्तमुदाहर ॥ १२ ॥

प्रथममिति—यदि प्रथमदलं इषु-निहतरसलघुगुरुकृतं स्यात्
त्रिंशल्लघुभिर्गुरुणा चैकेन भवेत्, अपरं च द्वितीयदलं गुणहत-नवलघु-
गुरुयुगलकृतं गुणैस्त्रिभिर्हता गुणिता नव सप्तविंशतिरित्यर्थः, तत्संख्यकै
र्लघुभिर्गुरुयुग्मेन च कृतं स्यात्, तर्हि खञ्जा छन्दः । वर्णवृत्तत्व-निवृत्तये
प्राह—रसहतेति । त्रिपष्टिमात्रं खञ्जा छन्दः इत्यर्थः ॥ ९ ॥

सप्तैति—यत्र पूर्वदले त्रिंशन्मात्रा स्तथोत्तरदले च, तद् रुचिरा
छन्दः इत्यर्थः । अन्त्य गुरु ज-गण-वर्जितं चेति षष्टिमात्रमेतत् ॥ १० ॥

पञ्चाधिकेति—यस्य प्रतिपादमेकविंशतिमात्रा भवन्ति, पादा-
नामादिवर्णो गुरुः स्यात्तत् प्रवङ्गमः छन्दः । चतुरशीतिमात्रमेतत् ।
सुमुखीत्यत्र स्त्रि-वर्णस्य गुरुत्वं न मन्तव्यं, “हे प्रे च” पूर्वस्य गौर्दे-
कल्प्यात् । सुसौरभा इति कला-विशेषणं, शोभना सौरी सूर्योत्पन्ना
भा धृति र्यासां ताः, अतिरम्या इति भावः । कवीति कविभ्यो दत्तं
कं सुखं येन तस्मिन् ॥ ११ ॥

षोडशेति—अरिलनामवृत्तं प्रत्युदाहर कथय मित्रेति शेषः ।

सचतुर्विंशतिसंख्यकलमिषु-कलिका-कलितश्च दलं ननु ।

ईदृशदलयुगलेन खलु चुलियालेति वृत्तमिदं सञ्चिनु ॥ १३ ॥

द्वात्रिंशत् कलिका यस्यां प्रतिपादं प्रकीर्त्तिताः ।

सा स्यात्त्रिभङ्गी विच्छिन्ना दशाष्टकरसाष्टकैः ॥ १४ ॥

दुर्मिलेयुदिता सा चेदशाष्ट भुवनै र्यतिः ॥ १५ ॥

[लक्ष्ये कल्प्ये । पञ्चदश रोलादीनि ।]

इति मात्राछन्दसि पञ्चमाटिकादिसकीर्णवृत्तनिरूपणं सप्तमी प्रभा ॥ ७ ॥

कीदृशं तदित्याह—षोडशसंख्याः कला येषु तादृशा श्रवणा श्रवणो
यस्मिन् तत । पुनः कीदृशमित्याह—शेषपादान्ते यमक-रूपं यल्लघु-
युगलं तेन मतोहरं रम्यं चतुःषष्टिमात्रमेतत् छन्दः ॥ १२ ॥

न चतुरिति—यस्य प्रथमे दले चतुर्विंशति-मात्राः पञ्चमात्राश्च भवन्त्येवं
द्वितीयेऽपि दले ताः स्यु स्तत् चुलियाला छन्दः । अष्टपञ्चाशन्मात्रमेतत् ॥

अथ त्रिभङ्गीवृत्तस्य लक्षणमाह—द्वात्रिंशदिति । दशभिरष्टभिः
षड्भि रष्टभिश्च प्रतिपादं यस्यां यतिः, सा त्रिभङ्गीत्यर्थः । अष्टात्रिंश-
त्यधिकैकशतमात्रमिदं छन्दः ॥ १४ ॥

दशाष्टेति—यदि त्रिभङ्गीयामेव दशभि रष्टभि श्रतुर्दशभिश्च
प्रतिपादं यतिः स्यात्तदा सैव दुर्मिला भवतीत्यर्थः । लक्ष्ये कल्प्ये
इति । तत्र त्रिभङ्गी यथा—

श्रुतिरत्न-विभूषण रुचिजितभूषण मलिदूषण नयनान्तगतिं ।

यमुनातट-तल्पित पुष्पमनल्पित मदजल्पित दयितासरतिं ।

वन्देमहि वन्दित-नन्दममन्दित कुलमर्दित खलकंसमतिं

त्वामिह दामोदर हलधर-सोदर हर नो दरमनुवद्धरतिं ॥

दशाष्टचतुर्दशकलिगता चेद् यतिः स्यात्तदेवमेव दुर्मिला बोध्या ॥ १५ ॥

इति श्रीविद्याभूषणविरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये सप्तमी प्रभा ॥

अष्टमी प्रभा ।

प्रस्तारोद्दिष्ट-नष्टानि तथा मेरुपताकिके ।

मर्कटी चेति षट् प्राहुः प्रत्ययान् वर्णमात्रयोः ॥ १ ॥

सर्वगुर्वादिमं वृत्तं सर्वलघ्वन्तिमं भवेत् ॥ २ ॥

तत्र वर्णप्रस्तारः—

पादे सर्वगुरौ गुरोः प्रथमतः कुर्यादधस्ताल्लघुं

शेषन्तूर्ध्वसमानकं विरचयेदूने गुरुनर्पयेत् ।

पादः सर्वलघुर्न यावदुदियात्तावद्विदध्यादिदं

अथोक्तानां छन्दसां प्रत्ययार्थं प्रस्तारादिक दर्शनीयम् । अतस्त-
दुद्दिशति प्रस्तारेति । तत्र वर्णछन्दसां प्राथमिकत्वात्तेषां तत्पूर्वं
वाच्यमिति व्यञ्जयति वर्णमात्रयोरिति ॥ १ ॥

जातीनां प्रस्तारेषु कृतेषु प्रथमं छन्दः सर्वगुरु वर्णं दृष्टं, अन्तिमं
तु सर्वलघुवर्णमित्याह—सर्वेति ॥ २ ॥

तत्र वर्णप्रस्तार—लक्षणमाह—पादे इति । आदौ सर्वगुरुः
पादः स्थाप्यः, सर्वगुर्वादिमं वृत्तमित्युक्तेः । यस्मिन् सर्वगुरौ पादे
स्थापिते सति तत्प्रथमस्य गुरोरधस्तात् लघुं कुर्यात् विलिखेत् । शेषं
सर्वमूर्ध्वसमानकं विलिखेत् । ऊर्ध्वं उपरिष्ठात् यो वर्णः गुरुरूपा गुरु-
लघुरूपा वा स्यु स्ते सर्वे यथावत्तदधो लेख्या इत्यर्थः । इमं विधिं
पुनः पुनः कुर्यात् । तत्र द्वितीयतृतीयादिके कृत्ये क्रियमाणे सति
ऊर्ध्वस्थितादाद्यात् गुरोरधस्ताल्लघु लेख्यः । शेषं तु सर्वमूर्ध्ववत्
कुर्यात् । अथ गुर्वधो लिखिताल्लघोः पूर्वमूने स्थाने गुरुनर्पयेत्
विलिखेत्—इति व्यक्तापेक्षं बहुवचनं गुरुं गुरु गुरुन् वेत्यर्थः । इदं
कृत्यं तावद् विदध्यात् कुर्यात् यावत् स सर्वगुरुः पादः सर्वलघु सन्न

प्रस्तारः खलु वर्णवृत्तनिपुणौ रेष स्मृतः पण्डितैः ।

अर्द्धमर्द्धसमे पादौ विषमे कृतस्नमेव सः ॥ ३ ॥

उदियात् न दृश्येतेत्यर्थः । एष खलु वर्णवृत्त-निपुणैः पण्डितैः प्रस्तारः स्मृतः, वर्णप्रस्तारोऽयमित्यर्थः । प्रस्तारो विस्तार इत्यर्थः । एषा समवृत्तानां प्रस्तार-कल्पना । अर्द्धसमवृत्तानां तु अर्द्धस्य पादकल्पना कार्या । शेष पूर्ववत्, यदुक्तं “अर्द्धसमस्य प्रस्तारे अर्द्धस्य प्रस्तारः कार्य” इति । विषमाणां तु प्रस्तारे छन्दसः पादकल्पना कार्या, यदुक्तं “विषम-प्रस्तारे पादचतुष्टयस्य प्रस्तारः कार्य” इति । इत्थं त्रिविधानां छन्दसां प्रस्तारो बोध्यः ॥ ३ ॥

| | |
|---------------------------|-----------------------------|
| एकवर्णप्रस्तारः—S (१) | चतुर्वर्णप्रस्तारः—SSSS (१) |
| । (२) | ।SSS (२) |
| द्विवर्णप्रस्तारः—SS (१) | S।SS (३) |
| ।S (२) | ।।SS (४) |
| S। (३) | SS।S (५) |
| ।। (४) | ।S।S (६) |
| त्रिवर्णप्रस्तारः—SSS (१) | S।।S (७) |
| ।SS (२) | ।।।S (८) |
| S।S (३) | SSS। (९) |
| ।।S (४) | ।SS। (१०) |
| SS। (५) | S।S। (११) |
| ।S। (६) | ।।S। (१२) |
| S।। (७) | SS।। (१३) |
| ।।। (८) | ।S।। (१४) |
| | S।।। (१५) |
| | ।।।। (१६) |

अथ वर्णोद्दिष्टं ॥ वृत्तवर्ण-शिरस्यङ्कान् विलिख्य द्विगुण-क्रमात् ।

एकं संयोज्य लघ्वङ्कैः सहोद्दिष्टं विभावयेत् ।

स्वरूपं वीक्ष्य वृत्तस्य तत् संख्याधीरितः फलम् ॥ ४ ॥

अथ वर्णनष्टं ॥ नष्टाङ्के भागमापूर्त्तः कुर्याद्वर्द्धं समे लघुः ।

अथ प्रस्तारोपयोगि उद्दिष्टमाह—वृत्तवर्णेति । वृत्तस्य परि-
दृश्यमानस्य छन्दसो ये लघुगुरुरूपा वर्णा स्तेषां शिरसि प्रथमात् द्विगुण-
क्रमादङ्कान् विलिख्य स्थानाद्विगुणानङ्कान् विन्यसेत्यर्थः । तेषु ये लघ्वङ्का
लघुवर्णशिरस्था अङ्का स्तैः सहैकमङ्कं संयोज्य मिश्रितं कृत्वा उद्दिष्टं
विभावयेत् । किं संख्याकमिदं छन्द इति विचिन्तयेदित्यर्थः ॥ यथा
अक्षरे, छन्दसि प्रथमं गुरुद्वयं ततः एकं लघु $\left[\begin{smallmatrix} १२४ \\ SS। \end{smallmatrix} \right]$ ईदृक् वृत्तं
वीक्ष्य प्रथमाक्षरे एकैकः द्वितीये द्विकः तृतीये चतुष्कः स लघोरुपर्यङ्कश्च-
तुष्करूपः एकेन मिश्रितः पञ्चमं वृत्तमिदमिति ज्ञापयति । यथा चतुरक्षरे
छन्दसि प्रथमं गुरुद्वयं ततो लघु स्ततो गुरुः $\left[\begin{smallmatrix} १२४८ \\ SS।S \end{smallmatrix} \right]$ ईदृक् वृत्तं
वीक्ष्य प्रथमे एककः द्वितीये द्विकः तृतीये चतुष्कः चतुर्थे चतुष्कोऽङ्को लेख्यः ।
चतुरङ्क एकेन युक्तः पञ्चमं वृत्तमिदमिति ज्ञापयति । इत्युद्दिष्टविधिः ।
उद्दिष्टफलमाह—स्वरूपमिति । वृत्तस्य रूपं दृष्ट्वा तत्संख्याज्ञानं तत्फलम् ।
अथ तदुपयोगिनष्टमाह—नष्टाङ्के इति । अक्षरादि-प्रस्तारे
पञ्चमं षष्ठमन्यद् वा नष्टं किञ्चिच्छन्दः, तत् कीदृजवेदिति पृष्टे नष्ट-
स्यादृश्यमानस्य वृत्तस्य संख्याङ्के यावत् वृत्तवर्णपूर्तिं विभागं कुर्यात् ।
अर्द्धं यथा स्यात्तथा इत्यर्द्धार्द्धं यातं विभज्य विभज्य गुरुलघुरूपान् वर्णान्
विलिखेत् । ततो वृत्त-स्वरूपं व्यक्तीभवेत् । तद्विभागो द्विधेत्याह—
समे इति । विभक्तव्ये नष्टसंख्याके समे सति तं विभज्य लघु लेख्यः,
विषमे सति तद्विभागासम्भवात्तत्रैकं निक्षिपेत् । सैकैस्मिन् विभक्तव्ये

विषमे त्वेकमाधाय विभक्तव्ये गुरुर्भवेत् ।

ततो नष्टस्य वृत्तस्य स्वरूपमवबुध्यते ॥ ५ ॥

अथ वर्णमेरुः ॥ कोष्ठान् कृत्वैकैकवृद्धान् द्विमुख्या-

नाद्यानन्त्यांश्चैकयुक्तान् विदध्यात् ।

मूर्द्धाङ्काभ्यां मध्यमान् संनियुज्या-

देषः प्रोक्तो वर्णमेरुः कवीन्द्रैः ॥

गुरु लैख्यः, समाङ्कविभागे लघु विषमाङ्कविभागे तु गुरुरिति भावः । यथा अक्षर-प्रस्तारे नष्टं पञ्चमं छन्दः कीदृगिति पृष्टे पञ्चानां वैषम्येण विभागासम्भवात् तत्रैकं निक्षिपेत्, जाता षट्, तेषां विभागे गुरुः, अथ त्रयाणां वैषम्येण विभागासम्भवात्तत्रैकं निक्षिपेत् जाता श्रत्वारः, तेषां विभागे गुरुः, द्वयोः साम्यात्तद्विभागे लघुरिति वृत्तवर्णानामागतत्वादतः परं न विभाग इति अक्षरे पञ्चमो भेदो गुरुद्वयैकव्यक्तीभवति (५५ ।) यथा चतुरक्षरे पष्टं वृत्तं नष्टं कीदृगिति पृष्टे षण्णां साम्यात्तद्विभागे लघुः त्रयाणां वैषम्यात्तत्रैकं निक्षिपेत्, तेषां विभागे गुरु द्वयोः साम्यात्तद्विभागे लघुः एकस्य विभागासम्भवात्तत्रैकं निक्षिपेत्, जातौ द्वौ तयो विभागे गुरुरिति लघु गुरु लघु गुरुरूप श्रतुरक्षरे षष्ठो भेदः गुरुद्वयैकव्यक्तीभवति (५६ ।) । नष्टफलमाह—तत इति । ततः समविषमनष्टाङ्कविभागागत-लघुगुरुवर्णोपादानादित्यर्थः । वृत्तसंख्याया वृत्त-रूपज्ञानं नष्टफलमित्यर्थः ।

अथ वर्णमेरुमाह—कोष्ठानिति । द्वौ कोष्ठौ मुख्यौ आदिमौ येषां तानेकैकवृद्धान् कोष्ठान् कृत्वा । अयमर्थः—एकाक्षरादिषु षड्विंश-त्यक्षरान्तेषु प्रस्तृतेषु कति भेदाः सर्वगुरवः कत्येकादि लघव एकादि गुरवो वा, कति सर्वलघवः, का वा प्रस्तार-संख्येति प्रश्ने मेरुणोत्तराय तस्य प्रवृत्तिः, तत्रैकाक्षरादि-क्रमेण यावदिष्टं पङ्क्तिकोष्ठान् कृत्वा तेषु प्रथमादि क्रमेण द्विप्रमुखानेकैकवृद्धान् कोष्ठान् विदध्यात्, तत्र प्रथमे पङ्क्तिकोष्ठे कोष्ठद्वयं द्वितीये कोष्ठ-त्रयं, तृतीये कोष्ठ-चतुष्टयमित्येवमग्रिमेषु बोध्यं ।

सर्वगुर्वादयो ये स्युर्भेदाः प्रस्तृतजातिषु ।

तत्संख्या वृत्त-संख्या च ज्ञायते वर्णमेरुणा ॥ ६ ॥

एवं निर्मितेषु कोष्ठेष्वद्यानन्त्यांश्च कोष्ठानेकाङ्कयुक्तान् कुर्यात्, मध्यमान् कोष्ठांस्तु मूर्ध्वकोष्ठद्वयाङ्कावेकीकृत्य तेन संनियुज्यात् पूरयेत् । एष वर्णमेरुः कवीन्द्रैरुक्तः । अस्य फलमाह—सर्वगुर्विति । प्रस्तृतायां जातौ सर्वगुर्वेकादिलघु सर्वलघुरूपा ये भेदाः सन्ति, तेषां संख्या मेरुणा ज्ञायते । मेरुपङ्क्तिकोष्ठस्थै रत्तरोत्तरैरङ्कैः क्रमादिति शेषः । पूर्व-पूर्वै स्त्वेकादिगुरूणामिति बोध्यं । वृत्तसंख्या तु पङ्क्तिस्थ-कोष्ठाङ्क-योगेन ज्ञायते इति यथैकाक्षर-प्रस्तारे आदावेकगुरुरन्ते त्वेकलघुः संख्या द्विकं । द्व्यक्षरे त्वादौ सर्वगुरुः स्थानद्वये एकलघुः अन्ते सर्वलघुः संख्या तु चतुष्कं । त्र्यक्षरे त्वादौ सर्वगुरुः स्थानत्रये एकलघुः स्थानत्रये द्विलघुः अन्ते सर्वलघुः, संख्या त्वष्टकं । चतुरक्षरे त्वादौ सर्वगुरुः चतुर्गुरु रन्यत्राभावात् स्थानचतुष्के त्रिगुरुः स्थानषट्के द्विगुरुः, स्थान-चतुष्के एकगुरुः अन्ते सर्वलघुः संख्या तु षोडशमिति ॥ ६ ॥

| | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|----|----|----|----|----|----|----|---|----|
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | १ | १ | १ | | | | | | | | |
| | | २ | | १ | २ | | १ | | ४ | | | | |
| | | | ३ | | ३ | | ३ | | ३ | | | | |
| | ४ | | १ | | ४ | | ६ | | ४ | १६ | | | |
| ५ | | १ | | ५ | | १० | | १० | | ५ | ३२ | | |
| | १ | | ६ | | १५ | | २० | | १५ | | ६ | १ | ६४ |

अथ वर्णपताका ॥ कृत्वा तावद् भुवि रम्यां पताकां

तस्यामुद्दिष्ट १२४८ वदङ्कान् निदध्यात् ।

पूर्वाङ्केनापूरयन्नुत्तराङ्कं पुच्छे तस्या निक्षिपेत्तं तु वृद्धं ॥

कुर्यादेवं त्यक्तवृत्ताधिकाङ्को यावत् प्रस्तार-प्रभेदा भवन्ति ।

एतां व्रते वर्णनिष्ठां पताकां सुज्ञै र्गम्यां पिङ्गलो नागराजः ॥७॥

मेरौ चतुर्वर्णप्रस्तारस्य षोडश भेदाः सन्ति, तशैकः सर्वगुरुः श्रुत्वारः त्रिगुरुवः षट् द्विगुरुवः चत्वार एकगुरुवः एकः सर्वलघुरिति । एवं षोडशभेदा भवन्ति । तस्मिन् प्रस्तारे कतमस्थाने सर्वगुरुः कतमस्थाने त्रिगुरुः कतमस्थाने द्विगुरुः कतमस्थाने एकगुरुः कतमस्थाने सर्वलघुः, का वा प्रस्तारसंख्येति प्रश्ने पताकया उत्तरं देयमिति तदर्थं पताकामाह—कृत्वेति । भुवि रम्यां पताकां कृत्वा लिखित्वा तस्यां वर्णोद्दिष्टवदङ्कान् निदध्यात् अर्पयेत् । यथा चतुर्वर्ण-प्रस्तारे १२४८ एक द्वि चतु रष्टांका वृत्तवर्णशिरसि भवन्ति, तथा पताकावंशदण्डे ते लेख्या इत्यर्थः । अथ तस्या उद्दिष्टाङ्क-पङ्क्ते रुत्तराङ्कं परपराङ्कं पूर्वा-पूर्वाङ्केन पूरयन् योजयन् सन् तं परपराङ्कं वृद्धं सन्तं तस्याः पताकायाः पुच्छेषु निक्षिपेदधोऽधः स्थापयेत्, यावत् प्रस्तार-प्रभेदा भवन्ति पूर्यन्ते तावदेवं कुर्यात् मेरुक्तप्रस्तार-संख्यया पताकांका वर्द्धनीया इत्यर्थः । त्यक्तेति वृत्त आगतो योऽङ्कः यश्च प्रस्तारसंख्यातोऽधिककलं तं त्यजन्निति ।

चतुर्वर्ण-पताका

| | | | | |
|---|----|----|---|----|
| १ | २ | ४ | ८ | १६ |
| ३ | ६ | १२ | | |
| ५ | ७ | १४ | | |
| ९ | १३ | | | |
| | १० | १५ | | |
| | ११ | | | |

त्रिवर्ण-पताका

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ८ |
| ३ | ६ | | |
| ५ | ७ | | |

द्विवर्ण-पताका

| | | |
|---|---|---|
| १ | २ | ४ |
| ३ | | |

सर्वगुर्वादयो भेदा मेरौ ये परिदर्शिताः ।

तेषां स्थानानि बोधन्ते विनान्वेषात् पताकया ॥ ८ ॥

अथ वर्णमर्कटी ॥

रचयित्वा षट् पङ्क्तिः कोष्ठानपि वर्णसंख्यकां स्तासा ।

पताकाफलमाह—सर्वेति । पताकाङ्क-दर्शनादेव सर्वगुर्वादि-भेदानां स्थानानि ज्ञायन्ते इत्यर्थः । तथाहि यथा श्रुतुर्वर्णप्रस्तारे १२४८ एक द्वि चतु रष्टांका देयाः, अङ्काङ्कस्य पूर्वाङ्काभावात् द्वितीयाङ्क-सारभ्य पङ्क्तिः पूर्यते, तत्र पूर्वाङ्क एकाङ्क एव, तस्मादुत्तरात् द्वितीयादयः ते चाव्यवहितनस्या पूर्याः ; तथाहि एक द्वियोमे व्यकः ३, स द्विती-याधः स्थाप्यः, एक चतुर्योगे पञ्चमङ्कः ५ अङ्काधः, एकाष्टयोगे नवाङ्क ९ पञ्चाधः, ततः पङ्क्ति-परित्यागः । मेरौ त्रिगुरु-रूपाणां चतुःसंख्या-दर्शनात् । अथ चतुरस्रस्याधः पूरित-पङ्क्तिस्था अङ्का उत्तराङ्कमिलिता देयाः, तत्र प्रथमः पूरिता एवेति त्यज्यते, द्विचतुर्योगे षडङ्कः ६ चतु-रकाधः स्थाप्यः, त्रिचतुर्योगे सप्ताङ्क ७ षडङ्काधः, पञ्चचतुर्योगादागतो नवाङ्को न स्थाप्यः, वृत्तत्वात्, नवचतुर्योगे त्रयोदशाङ्कः १३ सप्ताकाधः । द्व्यष्टयोगेदशाङ्क स्रयोदशाङ्काधः । त्र्यष्टयोगादेकादशाङ्कः ११ दशाङ्काधः ॥ पञ्चाष्टयोगे त्रयोदशाङ्को वृत्त एव, ततः पङ्क्तित्यागः । मेरु-संख्यापरिमाणोक्तेः । अथ चतुरष्टयोगे द्वादशाङ्क १२ अष्टाङ्काधः स्थाप्यः । षडष्टयोगे चतुर्दशाङ्कः १४ द्वादशाङ्काधः । सप्ताष्टयोगे पञ्चदशाङ्कः १५ चतुर्दशाङ्काधः ॥ त्रयोदशाष्टयोगेन नाग्रेऽङ्कसञ्चारः, प्रस्तारभेदाधिक्यपरत्वे । अष्टाङ्काग्रे षोडशाङ्कस्तु सर्वलघुज्ञापनायेति संप्रदायः । तथा चतुर्वर्णप्रस्तारे प्रथमो भेदः सर्वगुरुः, द्वित्रिपञ्च नवस्थान-भेदा त्रिगुरुवः, चतुःषष्टसप्तदशैकादशत्रयोदशस्थास्तु द्विगुरुवः, अष्टद्वादशचतुर्दशपञ्चदशस्थानस्था एकगुरुवः । षोडशस्थानस्थ स्तु सर्वलघुः । प्रस्तारसंख्या तु षोडशैवेति सर्वान्तराङ्कादवगतं । अनया

भर पूर्वाभेकाद्यै द्वयाद्यै द्विगुणै द्वितीयाश्च ॥ १० ॥
 प्रथमादिकयोरुभयो गुणितैरङ्कै तृतीयाश्च ।
 अत्र तृतीयाङ्काद्धै स्तुर्ग्यामथ पञ्चमीश्चापि ।
 पञ्चम्यङ्कै त्रिगुणैः षष्ठीमपि वर्णमर्कटी ह्येषा ॥ १० ॥
 छन्दःस्तद्भेदाक्षर-गुरु-लघुकलिका-प्रसंख्यात्री ॥ ११ ॥
 इति छन्दःकौस्तुभे वर्णप्रस्तारोऽष्टमी प्रभा ॥ ८ ॥

दिशा षड्विंशतिवर्ण-पर्यन्त पताकरचन विज्ञैर्बोध्यम् ॥ ८ ॥

मेरावुक्थादीनि षड्विंशतिः छन्दांसि सन्ति, तानि किं संख्या-
 नीति, अथोक्थादिच्छन्दस्सां प्रत्येकं भेदाः कति भवन्ति, तत्प्रभेदानाम-
 चराणि कति, तेषु अक्षरेषु कति गुरुणि कति च लघूनि भवन्ति, तत्प्र-
 भेदानां मात्राः कतीति प्रश्ने मर्कट्योत्तरं देयमिति तदर्थं वर्ण-मर्कटीं
 दर्शयति रचयित्वेति । हे सखे ! मर्कटी-निर्ममाणं स्त्वं षट् पङ्क्त्योः
 कृत्वा तासां पङ्क्तीनां वर्णसंख्यकान् कोष्ठकानपि कृत्वा षड्विंशति वर्ण-
 पर्यन्तानामुक्थादिवर्णच्छन्दसां छन्दस्तद्भेदादि-षड्क संख्या ज्ञातुकाम
 स्त्वं तासु षट्सु पङ्क्तिषु तत्पर्यन्तानां वर्णानां यावदिष्टं कोष्ठकान्निर्मा-
 येत्यर्थः । पूर्वा प्रथमां पङ्क्तिमेकाद्यै रेकद्वित्र्यादिभि रङ्कै भर पूरय ।
 द्वयादिभ द्विगुणितैरङ्कैः द्वितीयां च पङ्क्तिं भर । प्रथमः कोष्ठो
 द्वय केन द्वितीयश्चतुरकेन तृतीयोऽष्टांकेन पूरणीयः । एवमग्रेपोत्यर्थः ॥ १० ॥

उभयोः प्रथमद्वितीयपङ्क्त्योः रङ्कै गुणितै तृतीयां च पङ्क्तिं
 भर । प्रथमे कोष्ठे द्वय केन द्वितीयेऽष्टांकेन तृतीये चतुर्विंशत्यंकेन
 चतुर्थे चतुःषष्ट्य केनेत्येवमादिरीत्या तृतीयां पूरयेत्यर्थः । तृतीयपङ्क्ति
 मेवं पूरयित्वा तस्या तृतीयपङ्क्ते रङ्काद्धै चतुर्थीं पञ्चमीं च पङ्क्तिं
 भर । अथ त्रिगुणितैः पञ्चम्यङ्कैः षष्ठीञ्च पङ्क्तिं भरेत्यर्थः । एषा हि
 ईदृग्लक्षणा वर्णमर्कटी भवेत् ॥ १० ॥

[टीका]

षड्वर्णमर्कटी ।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | छन्दः |
|---|----|----|----|-----|-----|---------|
| २ | ४ | ८ | १६ | ३२ | ६४ | प्रभेदः |
| २ | ८ | २४ | ६४ | १६० | ३८४ | वर्णः |
| १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | १६२ | गुरुः |
| १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | १६२ | लघुः |
| ३ | १२ | ३६ | ६६ | २४० | ५७६ | मात्राः |

मर्कटीज्ञानफलमाह—छन्द इति । तत्र प्रथमया पङ्क्त्या छन्दः
 संख्या, द्वितीयया तद्भेदसंख्या, तृतीयया तदक्षरसंख्या, चतुर्थ्यां गुर्वक्षर-
 संख्या, पञ्चम्या लघ्वक्षर-संख्या, षष्ठ्या तु कला ज्ञायते इत्यर्थः ।
 यथैकाक्षरमुक्था छन्दः प्रथमं भवति, तस्य द्वौ भेदौ, तस्य द्विभेदस्य द्वे
 अक्षरे, तयोरेक गुरु एकं लघु । कलास्तु तिस्रो भवन्ति इति षड्भिः
 कोष्ठैः क्रमादमी षट् प्रत्ययाः प्रजायन्ते । यथा वा द्व्यक्षरमत्युक्था
 छन्दो द्वितीयं भवति, तस्य चत्वारो भेदाः, अष्टौ वर्णाः, तेषु चत्वारो
 गुरुश्चत्वारो लघवः कलास्तु द्वादशेति । एवं मध्यादिषु बोध्यं ॥ ११ ॥

इति श्रीविद्याभूषण-विरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये वर्णप्रस्तारादि-
 निरूपणाष्टमी प्रभा ॥ ८ ॥

नवमी प्रभा ।

अथ द्वित्रिचतुःपञ्चषट्कादीनां विनिर्भमे
प्रस्तारं खलु मात्राणां पादानां नागनायकः ।
तद्भेदा द्वित्रिपञ्चाष्टत्रयोदशमुखाः क्रमात् ॥ १ ॥

अथ मात्रावृत्तानां प्रस्तारादिकं वक्तुकाम स्तवामादौ पादमात्रा
संख्यामाह—अनेति । यथा वर्णवृत्तानामेकवर्णात् पादादारभ्य वृत्त्यन्य-
भवन् तथात्र मात्रावृत्तानामेकमात्रात् पादादारभ्य वृत्तानि भरेयुरित्याह
—द्वित्र्यादि । द्विमात्र स्त्रिमात्र श्रुतुमात्रः पञ्चमात्रः षण्मात्र । पादौ
भवति । आदिना सप्तमात्रादयो गृह्यन्ते । एकमात्रस्य प्रस्तारा
संज्ञाद् द्विमात्रादीनामुपादान ; ननु प्रस्तारे सति एषां कति भेदाः

द्विकल-प्रस्तारः

| | |
|----|---|
| S | १ |
| II | २ |

त्रिकल-प्रस्तारः

| | |
|-----|---|
| IS | १ |
| S | २ |
| III | ३ |

चतुष्कल-

| | |
|------|---|
| SS | १ |
| IIS | २ |
| ISI | ३ |
| SII | ४ |
| IIII | ५ |

प्रस्तारः

पञ्चकलप्रस्तारः षट्कल-प्रस्तारः

| | |
|------|---|
| ISS | १ |
| SIS | २ |
| II S | ३ |
| SSI | ४ |
| IIS | ५ |
| ISII | ६ |
| SII | ७ |
| IIII | ८ |

| | |
|------|----|
| SSS | १ |
| IIS | २ |
| ISI | ३ |
| SII | ४ |
| IIIS | ५ |
| SSII | ६ |
| IIIS | ७ |
| SSII | ८ |
| IIIS | ९ |
| SSII | १० |
| IIIS | ११ |
| SSII | १२ |
| IIIS | १३ |

छन्दःकौस्तुभः ।

६६

विषमकलो लघुः पूर्वः सर्वगुरुः समकलो भवेत् पादः ।

तत्र मात्राप्रस्तारः । दत्त्वाधः प्रथमगुरोर्लघुं विदध्या-

दूर्ध्वस्थैः किल सदृशानि शेषकाणि ।

ऊने स्याद् गुरु लघु वैष मात्रिकाणां

प्रस्तारः सकललघुर्न यावदङ्घ्रि ॥ २ ॥

स्युरिति चेत्तत्राह—तद्भेदा इति । तेषां द्विमात्रादीनां पादानां भेदा
द्वयादयो भवन्तीत्यर्थः । तत्र द्विमात्रो द्विभेदः, त्रिमात्र त्रिभेदः, चतुर्मात्रः
पञ्चभेदः, पञ्चमात्रः अष्टभेदः, षण्मात्रः त्रयोदशभेद इत्यर्थः । तत्रैक-
कला-पादस्योदाहरणं—यथा—मधु पिव । द्विकलापादस्य यथा—कृष्णः
पायात् । यथा वा, रतिमय भगवति ॥ १ ॥

अथ मात्रा-प्रस्तारं लक्षयितुकामः पादस्थापनां दर्शयति—विष-
मेति । अत्र पादस्थापना द्वेधा भवति । समकलस्य पादस्य सर्व्वे
गुरवः स्थापनीयाः, विषमकलस्य तु एको लघु स्ततो गुरुव इति यथा
द्विकल-चतुष्कल-षट्कलादेः पादस्य सर्व्वगुरुतया स्थापन त्रिकल-पञ्चकल-
सप्तकलादेस्त्वेको लघु स्ततो गुरुव इति । ततः प्रस्तार-प्रवृत्तिः । दत्त्वेति
प्रथमस्य गुरोरधस्ताल्लघुं दत्त्वा लिखित्वा ततः शेषकाणि ऊर्ध्वस्थैः सद-
शानि विदध्यात् विलिखेत् । शेषा मात्रा ऊर्ध्वस्थवलेख्या इत्यर्थः ।
अथ प्रथमगुर्वधो लिखिताल्लघोः पूर्व्वमूने स्थाने गुरुः स्यात्, लघु वा
स्यादिति । ऊनस्य स्थानस्य गुरुणा पूर्वी गुरु लेख्यं, लघुना पूर्वं तु
लघु लेख्यमित्यर्थः । यथा पञ्चकलस्य प्रस्तारेऽष्टौ भेदा भवन्ति ; तेषु
द्वितीयस्य भेदस्य ऊनं स्थानं गुरुणा पूर्य्यते । तृतीयस्योक्तं तु लघुनेति ।
यथा च षट्कलस्य पादस्य प्रस्तारे त्रयोदश भेदा भवन्ति ; तत्र नवम-
भेदस्य ऊनं गुरुभ्यां पूर्य्यते । एकादशस्योक्तं तु गुरुलघुभ्यां पूर्य्यते ।
एवं सप्तकलादिनाद-प्रस्तारभेदेषु तु कचिद्गुरुभ्यां लघुना गुरुमि लघुना
चोनस्थान-पूर्ति मृग्या । सकललघुरिति यावदङ्घ्रि-पादः सर्व्वलघु

अथ मात्रोद्दिष्टं-अङ्कं पूर्वाङ्कयुतं दत्त्वा शीर्षणि लघौ रधश्च गुरोः

लोपितगुरुशीर्षाङ्कान् मात्रोद्दिष्टं बोध्यमन्त्याङ्कात् ॥ ३ ॥

न भवेत् तावदेवं कुर्यादित्यर्थः । यथा वर्णवृत्तप्रस्तारे सर्वभेदाः समवर्णास्तथा मात्रावृत्तप्रस्तारे सर्व भेदाः सममात्रा भवन्ति अवधेयम् ॥ २

अथ मात्रोद्दिष्टं लक्षयति—अङ्कमिति । लघोः शीर्षणि पूर्वाङ्कयुतमङ्कं दत्त्वा गुरोस्तु शीर्षण्यधश्च तं दत्त्वाऽन्त्याङ्कात् उद्दिष्टं बोध्यं । कीदृशादन्त्याङ्कात् लोपितगुरुशीर्षाङ्कात् विलुप्तो गुरुशीर्षाङ्को यस्मात् स तथा तादृशादित्यर्थः । अत्र पूर्वाङ्कयुक्तस्य प्रदानं द्वेधा लघो रूप्योवाङ्कप्रदानं गुरोस्तूपर्यधश्च तदिति । यथा षट्कलस्य पादस्य प्रस्तारे त्रयोदश भेदा भवन्ति । तेषु आद्यन्तगुरु मध्यलघुद्वयश्च भेदो दृष्टः । स च किंखण्डाकोऽयमिति केनचित् पृष्टे सति तत्राद्यस्य गुरोरपरि एकाङ्को देयः । तस्याधो द्वितीयाङ्कः मध्येगतयो लघ्वोः प्रथमस्योपरि तृतीयाङ्कः द्वितीयस्यापरि पञ्चम्यङ्कः, अथान्त्यस्य गुरोरपरि अष्टमाङ्कः अधस्तु त्रयोदशाङ्क इत्यङ्क-प्रदानं । तदनन्तर अन्त्याङ्कात् त्रयोदशात् गुरुशीर्षाङ्को नवाङ्को लोप्यः । तस्मादुर्वरितश्चतुरङ्कः तेन परिज्ञायते चतुर्थप्रभेदोयमिति । यथा वा तेष्वेव भेदेषु आद्यन्तलघु मध्यगुरुयुग्मः प्रभेदो दृष्टः, तत्राद्यलघूपरि एकाङ्को देयः, मध्येगतयो लघ्वोः प्रथमस्योपरि द्वितीयाङ्कः अधस्तात्तृतीयाङ्कः, द्वितीयस्योपरि पञ्चमाङ्कः अधस्तादष्टमाङ्कः, अन्त्यलघूपरि तु त्रयोदशाङ्कः । इत्यङ्कप्रदानानन्तरमन्त्याङ्कात् त्रयोदशाद् गुरुशीर्षगतः सप्ताङ्को लोप्यः । तस्मादुर्वरितः षडङ्कः । तेन ज्ञायते षष्टः प्रभेदोयमिति । प्रभेदस्वरूपं दृष्ट्वा तस्य संख्योद्दिश्यतेऽमुकसंख्याकोऽयमिति । एवमन्यत्रापि बोध्यां ॥ ३

१ २ ५ ८

५ । । ५

२ १३

१ २ ५ १३

। ५ ५ ।

३ ८

अथ मात्रानष्टं—मात्राः सर्वाः कलाः कृत्वा पूर्वयुग्माङ्कसंयुताः ।

अन्त्याङ्को लुप्तपृष्ठाङ्कः पूर्यते येन येन सः ॥

तत्र तत्र गुरुं कुर्याद् गृहीत्वा तत्परां कलां ।

मात्रानष्टमिति व्रते पिङ्गलः फणिनायकः ॥ ४ ॥

अथ मात्रामेरुः—द्वौ द्वौ कोष्ठावेकवृद्ध्या कृत्वान्त्येकमपयेत् ।

आद्यान् प्रपूरयेदेक द्वयेकत्र्येकचतुः क्रमात् ॥ ५ ॥

अथ मात्रानष्टं लक्षयति—मात्रा इति । षट्कलस्य पादस्य त्रयोदशभेदेषु चतुर्थो भेदः कीदृशो भवतीति केनचित् पृष्टः तत्र चतुर्थे भेदे गुरुलघुरुपा या मात्राः सन्ति, ताः सर्वाः कलाः ह्रस्वमात्रा कृत्वा ततः षट्कलाभूतास्ताः पूर्वयुग्माङ्क-संयुताश्च कृत्वा पूर्वाङ्केन युक्तो योऽङ्कस्तत युक्तशिरस्काः कृत्वेत्यर्थः । एवं स्थापनायां सत्यां नष्टस्य चतुर्थ-भेदस्य व्याक्तिः कथं स्यादिति तदुपायमाह—अन्त्याङ्क इति । सोऽन्त्याङ्को लुप्तपृष्ठाङ्कः सन् येन येन पूर्यते तत्र परां कलां गृहीत्वा गुरुं कुर्यात् । अन्त्याङ्क त्रयोदशाङ्कस्तस्मात् पृष्ठाङ्के चतुरकेपि नीते सति नवाङ्क उर्वरितो भवति । स येन येन प्रथमपञ्चकलाकेन पूर्यते नवत्वं प्राप्नुयात्, तत्र तत्र प्रथमकलास्थाने ततः परया द्वितीयया षट् च कलया सहैकोकृत्य गुरुं मात्रा लिखेदित्यर्थः । ततो नष्टस्य गुरु लघु लघु गुरुरूपस्य चतुर्थभेदस्य ऽऽऽ व्याक्तिः भवति, यस्याः शिरस्युर्वरितः षडङ्कः स्थितो दृश्येत तां कलां परया सह गुरुं कुर्यात्, तदुदाहृत्यस्तु पञ्चमः प्रभेदो द्रष्टव्यः । एवं भेदान्तराण्यपि व्यञ्जनीयानि । द्विकलादीनाञ्च भेदा व्यञ्जनीयाः सुधोभिः ॥ ४ ॥

१ २ ३ ५ ८ १३

। । । । । ।

अथ मात्रामेरुमाह—द्वाविति । द्वौ द्वौ पङ्क्तिर्कोष्ठौ समौ लेख्यौ । तद्वयः पुनरेकवृद्ध्या द्वौ द्वौ कोष्ठौ समौ लेख्यौ । एक-

मूर्द्धाङ्किततूपराङ्गाभ्यां तिर्य्यग्भ्यां मध्यगान् भरेत् ।
मात्रामेरु रयं प्रोक्तः फलं प्राग्वच्च वेदितः ॥ ६ ॥

[illegible]

अथ मध्यकोष्ठेष्वङ्कदानमाह — मूर्द्धाङ्केति । पूरणीय-कोष्ठ
मूर्ध्वकोष्ठस्था तिर्यग्भूतां द्वावङ्कावेकाकृत्य मध्यस्थान् शून्यकोष्ठान्

| | | | | |
|---|----|---|---|----|
| १ | १ | २ | | |
| २ | १ | ३ | | |
| १ | ३ | १ | ५ | |
| ३ | ४ | १ | ८ | |
| १ | ६ | ५ | १ | १३ |
| ४ | १० | ६ | १ | २१ |

अथ मात्रापताकाः—

अङ्गान् मात्रापताकायां लिखित्वोद्दिष्टवत् क्रमात् ।
अन्त्याङ्गे वामगान् लुम्पन् पुच्छे शिष्टान् समर्पयेत् ॥७॥

पूर्येदित्यर्थः । ईदृगुलक्षणो द्विमात्रामेरु रूच्यते । एतस्य फलं तु वर्णमेरुवद् भवेदित्याह—फलमिति । द्विकलादीनां मात्राछन्दसां स्व-प्रस्तारे कति मेदाः, सर्व्वगुरवः कत्येकादिगुरवः कति, सर्व्वलघवः कति का वा प्रस्तार-संख्येति प्रश्ने मेरुणाऽनेनोत्तरं देयं । तथाहि द्विकल-प्रस्तारे एको गुरुरूपः एकः सर्व्वलघुः, प्रस्तार-संख्या तु द्वयं । त्रिकल-प्रस्तारे द्वावेकगुरु एकः सर्व्वलघुः प्रस्तारसंख्या तु त्रयं । चतुष्कल-प्रस्तारे एकः सर्व्वगुरुः त्रय एव एकगुरवः, एकः सर्व्वलघुः, संख्या तु पञ्चकं पञ्चकल-प्रस्तारे त्रयो द्विगुरवः, चत्वार एकगुरवः एकः सर्व्व-लघुः, संख्या षष्ठकं । षट्कलप्रस्तारे एकः सर्व्वगुरुः, षड् द्विगुरवः पञ्चैकगुरवः, एकः सर्व्वलघुः संख्या तु त्रयोदशकमिति । एवमन्यत्रापि बोध्यम् ॥ ६ ॥

अथ मात्रापताकामाह—श्रंकानिति । मात्रापताकायां
मात्रोद्दिष्टवदंकान् विलिखेत् । यथा पञ्चकल-प्रस्तारे १२३५८ एकद्वित्रि
पञ्चाष्टांका लिख्यन्ते ; यथा षट्कल-प्रस्तारे १२३५८ १३ एकद्वि

एकेनैक गुरुलोपे द्वाभ्यां द्विगुरु रीर्यते ।

त्रिभि स्त्रिगुरु रित्याह फलमस्या भुजङ्गराट् ॥ ८ ॥

त्रिपञ्चाष्टत्रयोदशांका लिख्यन्ते । पताकावंशदण्डे मात्रोद्दिष्टरीत्याऽंकाः स्थाप्या इत्यर्थः । ततः सर्वान्त्यांके तद्वामभागवर्त्तिनोऽंकान् विलु-
म्पन् तस्मात् शिष्टानुर्व्वरितान् अंकान् पताकापुच्छेषु अधोऽधः लिखेत् ।
कुड्यदिवं त्यक्तवृत्ताधिकांको यावत् प्रस्तारप्रभेदा भवन्ति इत्येतदप्यत्रा-
नुस्मर्त्तव्यमिति पताकानिर्माणविधि रुद्दिष्टः ॥ ८ ॥

मात्रापताकाफलमाह — एकेनेति । पताकायामेकेनान्त्यांकावयवे
लुप्ते एकगुरुर्भेदः द्वाभ्यां तस्मिन् लुप्ते द्विगुरुरीर्यते इत्याह पिङ्गवः ;
यथा षट्कजप्रस्तारे १ २ ३ ५ ८ १३ एकद्वित्रिपञ्चाष्टत्रयोदशांका भवन्ति ।
तेष्वन्त्य स्रयोदशांक स्तद्वामेऽष्टांकः, तेन त्रयोदशांके लुप्ते पञ्चांकः
शिष्टः, तस्य पूर्व्वत्र सत्वात् परकलया गुरुभावाच्च पञ्चांकात् पङ्क्तिक्रमः
कार्यः । तथा पञ्चभि स्रयोदशांके लुप्तेऽष्टांकः शिष्टः, स पञ्चमाधः,
त्रिभिः त्रयोदशांके लुप्ते दशांकः शिष्टः, सोऽष्टाधः, द्वाभ्यां त्रयोदशांके
लुप्ते ११ एकादशांकः शिष्टः, स दशाधः । एकेन त्रयोदशांके लुप्ते
१२ द्वादशांकः शिष्टः, स एकादशाधः मेरावेकगुरुस्थानानां पञ्चत्वान्नाग्रे
पङ्क्ति-सञ्चारः । अथ द्विगुरुरूपाणि पञ्चाष्टभि स्रयोदशलोपे
भागाभावात्तद्वामस्थै स्रयोदशलोपे द्व्यंकः शिष्टः, तस्य
सत्वात् परकजया गुरुभावाच्च द्व्यंकान् द्विगुरुपङ्क्तिक्रमः द्व्यष्टभि
स्रयोदशलोपे त्र्यंकः शिष्टः, स द्व्यधः । एकाष्टभि स्तलोपे चतुरकः
शिष्टः, स त्र्यधः । पञ्चत्रिभि स्तलोपे पञ्चांकः शिष्टः, स च
वृत्तत्वान्न स्थाप्यः । पञ्चभिर्द्वाभ्यां च तलोपे षड्कः शिष्टः, स
चतुरधः ; पञ्चभिरेकेन च तलोपे सप्तांकः शिष्टः, स षड्धः ; द्वित्रि-
लोपो वृत्त एव । एकत्रिभिस्तलोपे नवांकः शिष्टः, स सप्ताधः ;
षड्वि द्विगुरुस्थानानि मेरावुक्तेः । अथ त्रिगुरुरूपाणि त्रिपञ्चाष्टलोपे

अथ मात्रामर्कटी ।

पंक्तीः किल षट् कृत्वा संख्या स्तु कोष्ठकान् विलिखेत् ।

एकाद्यङ्कैः प्रथमामुद्दिष्टाङ्कैर्भरेद् द्वितीयाञ्च ।

युञ्जीत प्रथमाद्यो रङ्कैः प्रभेदगुणितै स्तृतीयाञ्च ॥ ९ ॥

विन्दुमधौकं दत्त्वा कृत्वा द्विगुणितमेवमन्यांश्च ।

विमात्रा घटय्य तृतीयाङ्के तच्छेषैः पूरयेत्तु र्याम् ॥ १० ॥

तिर्यक् तु र्याङ्काद्यैः संयुज्यात् पञ्चमीञ्चतुर्थाद्यैः ।

भागो नास्ति । एकद्विपञ्चलोपोप्यष्टात्मको वृत्तः । एकद्वित्रिलोपो
वृत्तः । एक अष्टभि स्तलोपे एकांकः शिष्टः, स चाद्ये स्थाने सर्व-
गुरुरूपमस्ताति बोधकः । एवमन्यत्र बोध्यम् ॥ ८ ॥

अथ मात्रामर्कटीमाह — पङ्क्तीरिति । मात्रामर्कट्यां षट् पंक्तीः
कृत्वा तास्तु मात्रासंख्यकान् कोष्ठान् विलिखेत् । तत्र प्रथमां पङ्क्ति-
मेकाद्य कै रेकद्वित्रिचतुरादिभि रङ्कैर्भरेत् पूरयेत् । द्वितीयां पङ्क्ति-
मुद्दिष्टाङ्कैर्मात्रोद्दिष्टाङ्कैरेकद्वित्रिपञ्चाष्टत्रयोदशाङ्कैर्विशल्यादिभिर्भरेत् ।
प्रथमाद्योः प्रथमाद्वितीययोः पङ्क्त्योरङ्कैर्गुणितै स्तृतीयां पङ्क्तिं युञ्जीत-
तयोरङ्कान् गुणयित्वा भरेदित्यर्थः । एकचतुर्नवविंशति चत्वारिंशदष्ट-
सप्तत्यादिभिः पूरयेदिति यावत् ॥ ९ ॥

अथ चतुर्थपङ्क्तेः पूरणविधिमाह — विन्दुमिति । प्रथमे कोष्ठे
विन्दुं शून्यं अथ द्वितीये कोष्ठे बहु एकं दत्त्वा तमेकं द्विगुणं द्व्यङ्कं
कृत्वा तं द्व्यङ्कं तृतीयपङ्क्तिस्थाच्चतुरङ्काद् विघटय्य दूरीकृत्य तच्छेषेण
द्व्यङ्केन तृतीयः कोष्ठः पूर्यः । एवमन्यांश्च द्विगुणान् कृत्वेत्युक्तेः तं
तृतीयकोष्ठस्थं द्व्यङ्कं द्विगुणं चतुरङ्कं कृत्वा तं तृतीयपङ्क्तिस्थान्नाङ्काद्
विघटय्य तच्छेषेण पञ्चाङ्केन चतुर्थः कोष्ठः पूर्यः । एवमेवाग्निमाः
कोष्ठाः पूर्याः, अनया रीत्या चतुर्थीं पङ्क्तिं पूरयेत् ॥ १० ॥

भिलितैरङ्कैः षष्ठी स्यान्मात्रामर्कटी ह्येषा ॥ ११ ॥

छन्दः प्रभेदकलिका गुरुलघुवर्णाप्रसख्यात्री ॥ १२ ॥

सञ्जीर्णछन्दांसि प्रकुर्वतो बहुविधानि चरितानि ।

मात्रा-मर्कटी ।

| | | | | | | |
|---|---|---|----|----|----|---------|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | छन्दः |
| १ | २ | ३ | ४ | ८ | १३ | प्रभेदः |
| १ | ४ | ६ | २० | ४० | ७८ | मात्राः |
| ० | १ | २ | ५ | १० | २० | गुरुः |
| १ | २ | ५ | १० | २० | ३८ | लघुः |
| १ | ३ | ७ | १५ | ३० | ५८ | वर्णाः |

अथ पञ्चमीं पङ्क्तिं तुर्याङ्काद्यैश्चतुर्थपङ्क्त्यङ्गवृन्दैः संयुज्याद्भरेत् । तिर्यग् यथा स्यात्तथेति भरणाक्रियाया विशेषणं । अथ चतुर्याद्योः चतुर्थीपञ्चम्योः पङ्क्तयो मिलितै रङ्कैः षष्ठीं च पङ्क्तिं संयुज्यात् । तयोरकान् युक्ता कृत्वा तां भरेदित्यर्थः । एकत्रिसप्तपञ्चदश-त्रिंशदादिभि स्तां पूरयेदिति यावत् । एषा हि मात्रामर्कटी स्यात् ॥ ११ ॥

अस्या ज्ञानात् फलमाह—छन्दः प्रभेदेति । यथैककलं छन्दः प्रथमं तस्यैको भेदः, एका कला तस्य गुरुवर्णो नास्तीति विन्दुदानादव-गम्यते । लघुवर्ण एको भवति, तथा वर्णः स एवैक इति । यथा वा द्विकलं छन्दो द्वितीयं भवति, तस्य द्वौ भेदौ द्विभेदस्य तस्य कलाश्चतस्रो भवन्ति । गुरुवर्ण एकः, लघुवर्णौ द्वौ सङ्कलनया त्रयो वर्णा इति । एवं त्रिकलादिषु ज्ञेयम् ॥ १२ ॥

विष्णो नवप्रभोऽयं स्यान्छन्दःकौस्तुभः प्रीत्यै ॥ १३ ॥

एवं ग्रन्थार्थं समाप्य एतद्ग्रन्थप्रयत्नस्य भगवत्प्रसादफलमाह—सञ्जीर्णेति । सञ्जीर्णानि कृतानि तस्य छन्दांसि येभ्य स्तादृशानि बहुविधानि नवरसवन्ति चरितानि प्रकुर्वतो विष्णोः प्रीत्यै प्रसादाय अयं छन्दःकौस्तुभः स्यात् । कोटश इत्याह—नवप्रभ इति । नव-प्रकरण इत्यर्थः, मणिपद्मे नूतन-कान्तिकः ॥ १३ ॥

(अवशिष्टानां छन्दसां लक्षणानि पञ्चदश ।)

नगण-सगणांकितो जनजगुरु-संयुतः ।

भवति किल गुच्छको वसुयति-विभूषितः ॥ १ ॥

षोडशकलचरणं भुवि संप्रति

मोदविवर्द्धकमखिलजनं प्रति ।

शेषयमकलघुयुगलमनाहर

मतिरुचि कारक संज्ञं सुरहर ॥ २ ॥ [अखिलमन्ये]

एकादशकलधारि बुधजनमानसहारि ।

इदमनुकूलमवेहि लघुकमन्तमनुधेहि ॥ ३ ॥

प्रफुल्लि कुसुमाली सतीयमतिमोदा ।

जसौ रगणनो चेत्ततो गुरुयुगमकम् ॥ ४ ॥

सगण निधाय जगणं विधाय कविसौख्यधाम कलगीत नाम ॥ ५ ॥

द्विपदी परिगदिता सा द्वादशकलयुक्ता या ॥ ६ ॥

हारि हरिणमेतदमलमास्त भसन-त्वे ल-सरुचि ॥ ७ ॥

नगणतो रराविन्दिरा लगी ॥ ८ ॥

सुगंधसौरभ नाम धेहि रसो जजौ च भरो यदा ॥ ९ ॥

छन्द स्तु तयौ लौ यदि संफुल्लक नामाञ्जति ॥ १० ॥

विद्धि कलितमृङ्गमखिल वन्दिह य-लोभि ।

पञ्चकयतिधारि भसनजेन नगलशोभि ॥ ११ ॥

द्विजकुलतिलकः श्रीमान् राधादामोदरो हरेः प्रेष्ठः ।

स्वर्णैः सूत्रैर्ग्रथित छन्दःकौस्तुभमिमं व्यतनोत् ॥ १४ ॥

वेदत्तपक्ष-संख्याता श्रद्धन्दसां व्यक्तयोऽत्र याः ।

लिखिताः सन्ति सन्तः कलयन्तु कृपाकुलाः ॥ १५ ॥

इति छन्दःकौस्तुभे मात्राप्रस्तारो नाम नवमी प्रभा ॥ ६ ॥

सम्पूर्णाः ।

श्रीश्रीमद्गुरवे समर्पणमस्तु ॥

कान्तिहम्बर मन्ततो लघुपूर्वतो रसजैश्च वैभवि ॥ १२ ॥

भणत मुखदेवमिह न स ल शोभि ॥ १३ ॥

निखिल-कवि-कलितरुचि शुचि नगण पञ्चकं,

यदि तदनुभवति किल गुच्छकमिति ॥ १४ ॥ गुच्छक-भेदोऽयं

भृङ्गारमेतच्चतुभिश्च तैर्विद्धि ॥ १५ ॥

(एतानि प्राकृत-पिङ्गलानुसारिणि दुर्गेश्वरभट्टेन विरचितानि बोध्यानि)

अथ स्वनाम-निर्देश-पूर्वकग्रन्थमुपसंहरति—द्विजेति । श्रीमान्

राधादामोदरः छन्दःकौस्तुभमिमं व्यतनोदकरोदित्यर्थः । कीदृशमित्याह

—स्वर्णैरिति । स्वर्णानि विचाराणि यानि सूत्राणि लक्षणानि तैर्ग्रथितं

निर्मितं । मणिपक्षो-कनकजेरकगुम्फितं ॥ १४ ॥

अथैतद् ग्रन्थोक्तानि छन्दांसि परिगणयति—अङ्कानां वामगत्या

स्थापनात् चतुःषट्सूत्रं शतद्वयमिह छन्दांसि गुणपक्षपक्षसंख्यानि

२२३ । मात्राछन्दांसि चन्द्राब्धि-संख्यानि ४१ । उभयानि तु

वेदत्तपक्षसंख्यानीति २६४ ॥ १५ ॥

इति श्रीविद्याभूषणविरचिते छन्दःकौस्तुभ-भाष्ये मात्राप्रस्तारादि—

निरूपणा नवमी प्रभा ॥ ६ ॥

परिशिष्टम् ।*

छन्दोमञ्जर्यां विशेषः—

षडक्षरायां वृत्तौ—१। 'विद्युल्लेखा' मो मः ।

अष्टाक्षरायां—२। नभलगा 'गजगतिः' ।

छन्दःपरिशिष्टे विशेषः—

नवाक्षरायां वृत्तौ—३। 'भद्रिका' भवति रो नरौ ।

४। द्विगुण-नगण-सहितः सगण इह विहितः ।

फणिपतिमतिविमला क्षितिप भवति 'कमला' ॥

५। अङ्कोन्माना वर्णा यत्र स्युः

सर्वे दीर्घाः सपेशेनोक्तम् ।

'रूपामाली'-संज्ञं तद् वृत्तम्

यस्मिंश्चेतः केषामुद्वृत्तम् ॥

त्रयोविंशत्यक्षरायां—

६। इह 'सुन्दरिका' पिङ्गलमुनिनोक्ता सद्वयतो भसताजूलभगाः ।

७। चतुर्विंशत्यक्षरायां—

नाम 'किरीट' मिदं भगना यदि पिङ्गलनागमुनीन्द्र-मतं किल ।

८। सगणैरिह वृत्तवरं वसुभिः किल 'दुर्मिल' मुक्तमिदं कविभिः ।

वृत्तरत्नाकरे विशेषः—

९। दशाक्षरायां वृत्तौ—तो जौ गुरुण्ये 'मुपस्थिता' ।

१०। एकादशाक्षरायां—'उपचित्र'मिदं सप्तसाल्लगौ ।

११। 'कुपुरुषजनिता' ननौ गौगः ।

१२। 'अनवसिता' न्यौ भगौ गुरुरन्ते ।

वृत्तरत्नाकर-परिशिष्टे विशेषः—

दशाक्षरायां वृत्तौ— १३। 'दीपकमाला' भूमौ मता जगौ ।

१४। ज्ञेया 'हंसी' म भ न ग-युता ।

एकादशाक्षरायां— १५। 'विध्वङ्कमाला' भवेत्तौ तगौ गः ।

१६। रेण जेन सेन लगयो द्रुता ।

१७। नररत्नै गुंरा 'विन्दिरा' मता ।

द्वादशाक्षरायां— १८। पञ्चमुनि भूमौ स्यात् सयुता 'ललना' ।

१९। 'ललित'मभिहितं नौ श्री नामतः ।

२०। 'द्रुतपदं' भवति नभनया श्वेत् ।

२१। सर्वे मा यस्मिन् सोऽयं 'विद्याधारः' स्यात् ।

२२। लघुगुरु वदन्ति 'पञ्चवामरम्' ।

२३। 'सारङ्ग' संज्ञं समस्तै स्तकारैस्तु ।

२४। 'मोटक' नाम समस्तभमीरय ।

२५। रविलघु 'तरलनयन' मिह ।

त्रयोदशाक्षरायां— २६। यमौ रौ विख्याता 'चञ्चरीकावली' गः ।

२७। नसरयुगौ 'अन्द्ररेख'तुलोकैः ।

२८। 'कुटजगति' नजौ सप्तर्तु मतौ गुरुः ।

२९। जतौ सजौ गो भवति 'मञ्जुहासिनी' ।

३०। इह 'कन्दुकं' यत्र येभ्यश्चतुर्भ्यो गः ।

चतुर्दशाक्षरायां— ३१। ननतजगुरुगैः सप्तयति 'नदी' स्यात् ।

३२। 'लक्ष्मी' रत्न-विरामा मसौ तनौ गुरुयुग्मम् ।

३३। त्रिननगगिति वसुयति 'सुपवित्रम्' ।

३४। 'मध्यक्षामा' युगदशविरमा भूमौ न्यौ गौ ।

३५। युगदिग्भिः 'कुटिल'मिति समौ न्यौ गौ चेत् ।

३६। नजभजला गुरुश्च भवति 'प्रमदा' ।

३७। सजसा यलौ गिति शरग्रहै 'मञ्जरी' ।

३८। नजभजगौ गुरुश्च वसुपद 'कुमारी' ।

३९। नरनरैर्लंगौ च रचितं 'सुकेशरं' ।

४०। भूमौ न्यौ लंगौ चेदिह भवति च 'चन्द्रौरसः' ।

४१। 'वासन्ती'यं स्यादिह खलु मतौ न्यौ गौ चेत् ।

४२। 'चक्रपद'मिह भनननलगुरुभिः ।

पञ्चदशाक्षरायां— ४३। ननतभरकृताष्टस्वरै 'रूपमालिनी' ।

४४। कथयन्ति 'मानसहंस' नाम सजौ जभराः ।

४५। सगणैः शिववक्त्रमितौ र्गदिता 'नलिनी' ।

४६। शंस 'निशिपालक' मिदं भजसनाश्च रः ।

षोडशाक्षरायां वृत्तौ—

४७। संकथिता भरौ नरनगाश्च 'धीरललिता' ।

४८। नजरभभेन गेन च स्यान् 'माणिकल्पलता' ।

४९। यस्मिन् सर्वे गा राजन्ते 'ब्रह्माद्य' तद् "रूपं" नाम ।

५०। भो रयना नगौ च यस्यां 'वरयुवति'रियम् ।

सप्तदशाक्षरायां—

५१। रसयुगहययुङ् नौ श्री सो लगौ हि यदा 'हरिः' ।

५२। भवेत् 'कान्ता' युगरसहयै र्यमौ नरसा लगौ ।

५३। ससजै 'रतिशायिणी', मता भजपरै गुरुभ्यां ।

५४। अवेहि 'पञ्चवामरं' जरौ जरौ जगौ लघुश्च ।

अष्टादशाक्षरायां—

५५। मात सो जौ भर-संयुतौ करिवाणखै 'हरिणप्लुता' ।

५६। पञ्चभकारयुता ऽध्वगति' र्यादि चान्त्य सरचिता ।

५७। 'सुधा' तर्कै स्तर्कै भवति ऋतुभि र्यो मो नसतसाः ।

५८। वर्णाश्वै र्मननततमकैः कीर्त्तिता 'चित्रलेखे'यम् ।

- ५६। भाद्र रनना नसौ 'भ्रमरपदक' मिदमभिहितम् ।
 ६०। 'शादूलं' वद मासषट्कयति मः सो जसौ रो म श्चेत् ।
 ६१। अर्थाश्वाश्वै र्मभनययुगै र्वृत्तं मतं 'केसरं' ।
 ६२। भौ न्जौ श्री चे 'चल' मिदमुदितं युगै र्मुनिभिः स्वरैः ।
 ६३। सैका वसुविरति स्तनौरै र्भुभि र्युता 'लालसा' ।
 ६४। भवति नयुगलं रभौ रौ दशभि र्भजेन्द्रलता' ।
 ६५। तद्भूतत्वाश्वै र्मो भूमौ विरतिश्चेत् 'सिंहविस्फूर्जितं' यौ ।
 ६६। स्त्री जजौ भर-संयुतौ करिवाणखै र्हरनर्त्तनम् ।
 ६७। इदं 'क्रीडाचक्रं' सदीर्घं समस्तै र्यकारैः समेतं ।
 ६८। वेदाङ्गान्तै र्मभनययुगैः स्यादियं 'चन्द्रलेखा' ।
 ६९। 'हीरक' मुदितं भसनजनैरिह रगणोऽन्ततः ।

ऊनविंशत्यक्षरायां—

- ७०। नयुगलगलघू निरन्तरौ यदा स 'पञ्चवामरः' ।
 ७१। वृत्तं 'विम्बाख्यं' शरमुनितुरगै र्मतौ न् सौ ततौ चेद् गुरुः ।
 ७२। रसैः षड्भि र्लोकै र्यमनससजा गुरु र्भकरन्दिका' ।
 ७३। इनाश्वैः स्याद् यभनयजजगाः कीर्त्तिता 'मणिमञ्जरी' ।
 ७४। गजाब्धितुरगै र्जसौ जसतभा गश्चेत् 'समुद्रतता' ।

विंशत्यक्षरायां वृत्तौ—

- ७५। ख्याता पूर्वेः 'सुचंशा' यदि भरभना सद्वयं गो गुरुश्च ।
 ७६। सभरा न्मौ यलगा खयोदशयति 'मत्तेभविक्रीडितम्' ।

दण्डके—

- ७७। यकारैः कवीच्छानुरोधान्निवद्धैः प्रसिद्धो विशुद्धोऽपर-
 दण्डकः 'सिंहविक्रीड' नाम्ना ।
 ७८। स्वेच्छया रजौ क्रमेण सं निवेशयत्युत्तरधीः कविः स
 दण्डकः स्मृतो जगत् 'शोकमञ्जरी' ।

७९। नयुगलगुरुयुगेवं यकाराः कवीच्छानुरोधात्, तदा [यत्र
 वक्ष्यन्ते एषोऽपरो दण्डकः पण्डितैरीरितः 'सिंहविक्रान्त'-नामा ।

अर्द्धसमवृत्तौ—

८०। अयुनि तनभभाः समकेऽपि तु नयुगरयुगलं तदा
 'कौमुदी' ।

८१। यदि विषमे भवतो नजौ जरौ सजयाः समे तु रलौ गो
 'मञ्जुसौरभम्' ।

छन्दोमञ्जर्या वक्त्रप्रकरणे (अनुष्टुभ्)

८२। पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।

गुरु षष्ठञ्च जानीयात् शेषेष्वनियमो मतः ॥

प्रयोगे प्रायिकं प्राहुः केऽप्येतद् वक्त्रलक्षणम् ।

लोकेऽनुष्टुबिति ख्यातं तस्याष्टाक्षरता मता ॥



शुद्धिपत्रम् ।

| पृष्ठायां | पंक्तौ | अशुद्धः | शुद्धः |
|-----------|--------|-----------------|------------------|
| ३ | ५ | वर्न | वर्ण |
| ६ | ७ | सधादि | सर्वादि |
| ८ | ६ | पक्तिरेव | पङ्क्तिरेव |
| १३ | ७ | ना मः | नौ मः |
| २४ | ६ | शक्कुंरी | शर्करी |
| २५ | २ | भनति | भणति |
| ३२ | ७ | दिगर्कु | दिगर्क |
| ३४ | ५ | याद | यदि |
| ३७ | ६ | गमाजे | गमोजे |
| ३६ | ७ | प्रथित | प्रथितं |
| ४२ | ५ | तजरेस्तु | तजरैस्तु |
| ५३ | २ | मात्रासमादिपादः | मात्रासमादिपादैः |
| ५४ | ७ | त्रिशत्कल | त्रिंशत्कल |
| ६५ | ४ | स्तासा | स्तासां |

मन्तव्यं ।

इन्दिरा—मणिकल्पलता—कुटिलादीनि छन्दांसि मूले धृतान्यपि भ्रमात् परिशिष्टेऽपि सन्निविष्टानीति । तथा टीकायां भ्रमादिकं परिशोधितव्यं तत्रभवद्भिः सुधीभिः ।